जैविक कृषि

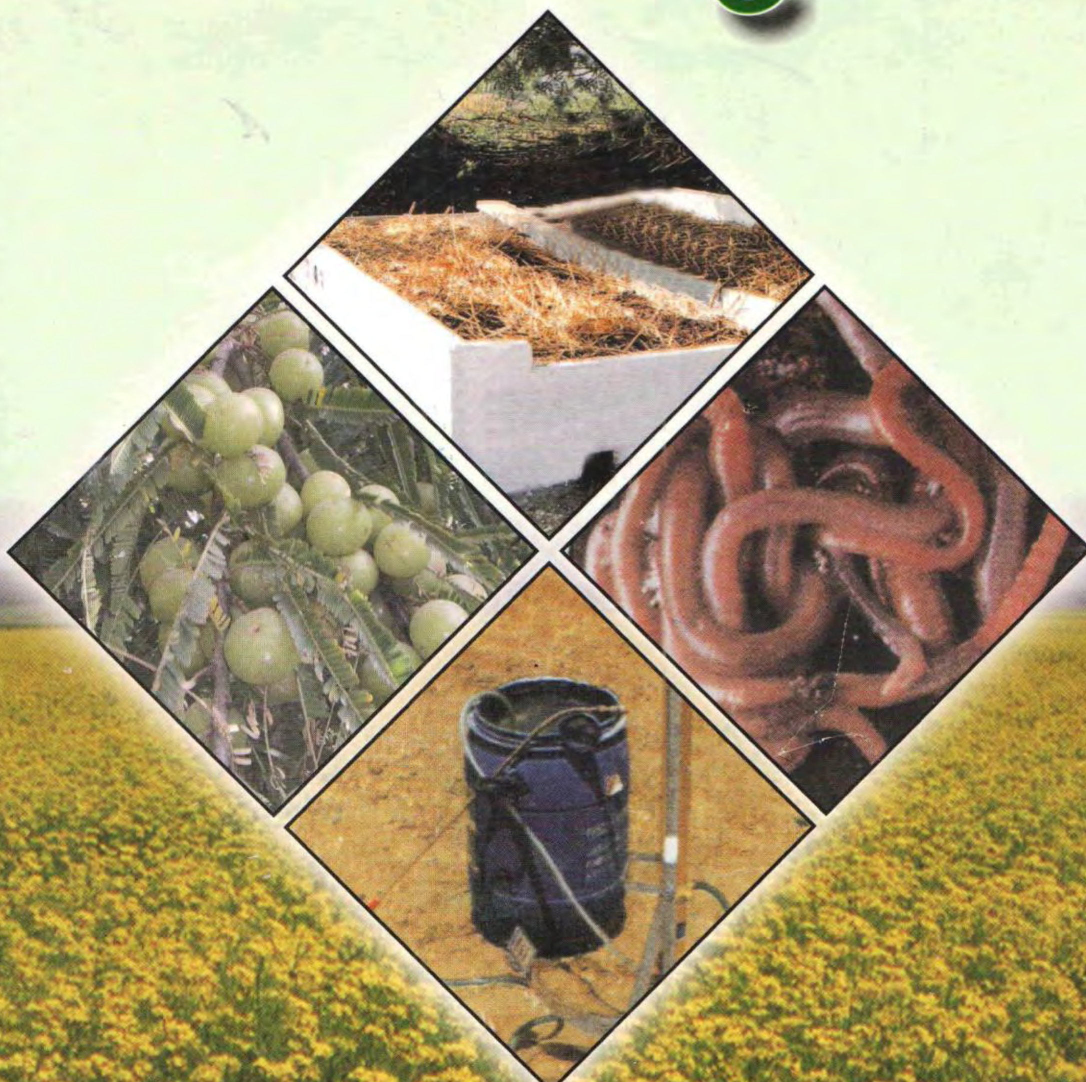

ग्राविस
जोधपुर

जैविक कृषि

संपादक: डॉ. प्रकाश त्यागी

ग्राविस
जोधपुर

जैविक खेती

संस्करण : 2006

प्रकाशक :
ग्राविस
ग्रामीण विकास विज्ञान समिति
3/458, मिल्कमैन कॉलोनी,
पाल रोड़, जोधपुर–342008
फोन : 91–291–2785317
फैक्स : 91–291–2785549
ई–मेल : gravis@datainfosys.net
वैवसाइट : www.gravis.org.in

तकनीकी सहयोग :
हैडकॉन
हैल्थ एन्वायरमेन्ट एण्ड डवलपमेन्ट कन्सोर्टियम
67/145, प्रताप नगर हाऊसिंग बोर्ड,
सांगानेर, जयपुर–303 906
फोन : 91–141–2792994
फैक्स : 91–141–2790800
ई–मेल : hedcon@datainfosys.net

वित्तीय सहयोग :
यूरोपियन यूनियन एवं हैल्पेज इन्टरनेशनल (यू.के.)
के आर्थिक सहयोग से अडोप्ट परियोजना के अन्तर्गत प्रकाशित

मुद्रक :
भालोटिया प्रिन्टर्स, जयपुर फोन : 2200111

ISBN 978-81-976789-0-5

जैविक खेती

जैविक खेती प्राचीन भारतीय कृषि प्रणाली है और यह आधुनिक रसायन प्रधान युग में भी प्रासंगिक है। "पर्यावरण में स्वच्छता तथा प्राकृतिक संतुलन बनाये रखकर मृदा, जल और वायु को प्रदूषित किये बिना, भूमि को स्वस्थ एवं सक्रिय रखकर दीर्घकालिक उत्पादन प्राप्त करने को ही जैविक खेती या प्राकृतिक खेती कहते हैं।" इस पद्धति में उर्वरकों व रसायनों का कम से कम उपयोग किया जाता है, इसलिये यह सस्ती और टिकाऊ है तथा सबसे महत्वपूर्ण पर्यावरण के अनुकूल है। मृदा भौतिक माध्यम न होकर जैविक माध्यम है जिसकी सुरक्षा परमावश्यक है, टिकाऊ खेती से तात्पर्य प्राकृतिक एवं कृत्रिम वृद्धि निवेशों के ऐसे सम्भावित प्रबन्ध से है जिसके तहत प्राकृतिक स्रोतों की गुणवत्ता, वर्तमान व भविष्य में उत्पादकता में वृद्धि के साथ–साथ पर्यावरण के सन्तुलन को बनाये रखते हुए किया जाये। ऐसी तकनीकें जो लम्बे एवं कम समय तक दोनों दशाओं में अधिक सुदृढ़ एवं पर्यावरण सम्मत हो, वही टिकाऊ हो सकती है। प्राकृतिक स्रोत केवल भोजन, चारा, कपड़ा, ईंधन आदि ही नहीं देते बल्कि ये पर्यावरण सन्तुलन भी विभिन्न क्रियाओं द्वारा बनाये रखते हैं।

जैविक खेती ऐसी कृषि कार्यशाला है जो कि रसायनों के ऊपर निर्भरता को कम करती है। रसायनिक खेती की अपेक्षा सस्ती है क्योंकि इस पद्धति के अन्तर्गत वनस्पति व जीवों के द्वारा भूमि व भूमि तत्वों का उपयोग किया जाता है व भूमि के वनस्पति, प्राणी व अन्य जैविक वस्तुओं द्वारा बनी खाद भूमि को लौटाई जाती है। अब भविष्य में देश की निर्बाध गति से बढ़ती जनसंख्या का पेटभर भोजन उपलब्ध कराने के लिये खाद्यान्न में आत्म–निर्भरता दीर्घकालीन परिप्रेक्ष्य में स्थायित्व लाने के लिये सिमटते प्राकृतिक संसाधनों के दोहन को अधिक तर्क संगत बनाने के साथ–साथ उनकी उपयोग क्षमता में भी सुधार लाना होगा। जैविक व कृषि पद्धतियों का प्रयोग कर खरपतवार, कीट व रोगों का नियंत्रण करना ताकि भूमि में पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाने के साथ–साथ मृदाक्षरण व जल ह्रास को रोकना टिकाऊ खेती या प्राकृतिक खेती ये एक दूसरे में पर्याय हैं। मृदा की उर्वराशक्ति कार्बनिक पदार्थों के बेहतर प्रबन्धन से बढ़ाई जा सकती है।

विश्व व्यापार समझौते के अनुसार कृषक अब उन्हीं उत्पादों का निर्यात कर सकेंगें जो किसी प्रकार से प्रदूषित नहीं हो एवं केवल जैविक विधियों से ही उत्पादित हो और जो मानव स्वास्थ्य पर

प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालें। इस प्रकार जैविक खेती से जहाँ ग्रामीण स्तर की स्वच्छता बढ़ाई जा सकती है, वहीं खेतीहर मजदूरों, लघु, सीमान्त कृषकों की स्वमेव आमदनी बढ़ेगी तथा बाहरी आदान सामग्री खाद, बीज, दवा नहीं खरीदने पर लागत में कमी और मुनाफा अधिक होगा और ग्रामीण अर्थव्यवस्था में सुधार आयेगा।

जैविक खेती के गुण :

1. सरल, सस्ती, स्वावलम्बी और स्थायी है।
2. मृदा संरचना में अद्भुत सुधारकर पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाकर पौधों की संतुलित पैदावार एवं भूमि की उर्वरा शक्ति की निरन्तरता बनाये रखती है।
3. प्रदूषण विहीन भूमि, जल, वायु एवं पर्यावरण से जन स्वास्थ्य को रोग–मुक्त रखती है।
4. ग्राम स्वावलम्बन पर आधारित स्वदेशी तकनीक को बढ़ावा मिलेगा।
5. इसे अपनाना सम्भव है व उसकी आज के संदर्भ में आवश्यकता निर्विवाद है।
6. यह कृषि उत्पादन की वह कार्यशाला है जिसमें कई उपायों के मध्य समन्वय स्थापित किया जाता है।
7. इसे किसान भाई आसानी से अपना सकते हैं।
8. यह परम्परागत प्राचीन खेती है जिसे मध्य युग की कृषि पद्धति ने बिगाड़ दिया है जिसे पुनः स्थापित किया जाना है।
9. भूमि को बंजर होने से रोकना है।
10. इसमें रसायनों का उपयोग कम से कम होता है।
11. पर्यावरण पारिस्थिकीय मित्र भी है।
12. जैविक खेती से वर्षा आधारित खेती में विपुल उत्पादन सम्भव है।
13. भारत की खाद्य समस्या का समाधान जैव पौध पोषण को मुख्य आधार बनाकर सम्भव है।
14. वर्षा आधारित व सिंचित कृषि में उत्पादकता बढ़ाना सम्भव है। यदि उत्पादन तकनीकी में परिवर्तन, जो कम खर्च व सदाबहार टिकाऊ तकनीकी पर आधारित है, को शीघ्रता से अपनाया जा सकता है।
15. कृषि की प्रत्येक योजना का लक्ष्य कृषि उत्पादन को स्थायित्व देने में जैविक खेती की महत्वपूर्ण भूमिका है।
16. इस प्रणाली में उत्पादन लागत कम की जा सकती है और उत्पाद की गुणवत्ता में वृद्धि की जा सकती है जिससे हमारा देश वैश्वीकरण के दौर में विश्व बाजार में प्रतियोगिता कर सकता है।

जैविक खाद

पादप अवशेष, पशु और मानव अवशिष्ट पदार्थ से बनी खादों को जैविक खाद कहते हैं। स्थूल कार्बनिक खादों में गोबर की खाद, कम्पोस्ट और हरी खाद व सान्द्रित कार्बनिक खाद में खलियाँ, पशु जनित व मछली की खादें आती हैं। जैव उर्वरकों राइजोबियम नीली हरी शैवाल व फास्फोटिक बैक्टीरिया आते हैं।

जैविक खादों से पोषक तत्व प्रबन्धन का प्रमुख उद्देश्य

- उर्वरकों की उपयोग क्षमता में वृद्धि करना।
- फसलों की उत्पादकता बढ़ाना।
- मृदा उर्वरता को बढ़ाना एवं उसे स्थिर रखना।
- किसानों की सामाजिक तथा आर्थिक दशा को बदलना।
- पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचाना।

जैविक खादों का मृदा गुणों पर प्रभाव

मृदा के भौतिक गुणों पर प्रभाव

- मृदा में जीवांश स्तर में वृद्धि के कारण भुरभुरापन एवं वायु संचार में वृद्धि होती है।
- मृदा की जलधारण एवं जल सोखने की क्षमता में सुधार (35–40 प्रतिशत) होता है।
- मृदा ताप को भी नियंत्रित रखती है।
- जड़ों का विकास अच्छा होने के कारण मृदा क्षरण की सम्भावना कम होती है।
- मृदा दानेदार बनती है।
- मृदा से जल ह्रास कम होता है।
- मिट्टी की सुघट्यता (Plasicity) तथा संसंजन (Cohesion) को घटाने है।
- भू–क्षरण कम होता है।
- चिकनी काली मिट्टी (Friable) भुरभुरा बनती है।

मृदा के रासायनिक गुणों पर प्रभाव

- प्रमुख पोषक तत्वों (प्राथमिक पोषक तत्वों) की पूर्ति के साथ–साथ सूक्ष्म पोषक तत्वों, हारमोन्स एवं एन्टीबायोटिक्स की मात्रा भी प्राप्त होती है जो विशेष लाभकारी है।
- ताजे कार्बनिक पदार्थ सड़ने पर साइट्रेट आक्सलेट ट्राइप्लेट व लैक्ट्रेट पैदा करते हैं। जो लौह व एल्युमीनियम को बाँधकर फॉस्फेट की उपलब्धता को बढ़ाते हैं।
- पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ने के कारण कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ जाती है।
- मृदा में अनुपलब्ध तत्वों की उपलब्धता जीवांश में वृद्धि के कारण अपने आप बढ़ जाती है।
- मिट्टी की उभय प्रतिरोधी क्षमता (Buffering Capacity) बढ़ती है।
- अमोनियम आयन को अपने साथ संयुग्मित कर अमोनियम के निक्षालन (Leaching) को कम करता है।
- मृदा के लवणीयता एवं क्षारीयता में सुधार होता है।
- मृदा में घनापन अतिशोषण क्षमता (Cation adsorption Capacity) बढ़ती है।
- मृदा में पोटेशियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम को विनिमय योग्य रुप में संचित रखती है।
- इसमें नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश व गंधक कार्बनिक रुपों में पाये जाते हैं।
- इनके अपघटन से जो अम्ल उत्पन्न होते हैं, वे खनिजों को घोलकर पोषक तत्वों को मुक्त करते हैं।

मृदा के जैविक गुणों पर प्रभाव

- मृदा में लाभदायक जीवाणुओं की संख्या में वृद्धि होती है।
- लाभदायक जीवाणुओं की क्रियाशीलता में वृद्धि होती है।
- सूक्ष्म जीवों के लिये भोजन व ऊर्जा प्रदान करती है। ये सूक्ष्मजीव अमोनीकरण, नाइट्रीकरण, नाइट्रोजन यौगिकीकरण आदि से योग सम्पन्न करते हैं।
- जीवाणु जटिल पदार्थों को विच्छेदित कर आयनिक रुप में पौधों को उपलब्ध कराते हैं।
- अनेक जीवाणु मृदा से पोषक तत्व लेकर पौधों को प्रदान करते हैं।

जैविक खादों से पोषक तत्व प्रबन्धन के प्रमुख घटक

जैविक खादों से पोषक तत्व प्रबन्धन

गोबर की खाद, कम्पोस्ट खाद, केंचुआ खाद, गोबर गैस की खाद, खलियाँ की खाद, तालाब की मिट्‌टी की खाद, मुर्गी की खाद व पशु जनित खाद।

हरी खाद से पोषक तत्व प्रबन्धन

हरी खाद व फसल अवशेष प्रबन्धन।

जीवाणु उर्वरकों से पोषक तत्व प्रबन्धन

राईजोबियम, एजेटोबेक्टर, एजोस्पाइरीलम, नील हरित काई, एजोला, स्फुरघोलक, सूक्ष्म जीवाणु, माइकोराइजा।

दलहन फसलों से पोषक तत्व प्रबन्धन

फसल चक्रों में दलहनों का समावेश अर्न्तवर्ती खेती में दलहनों का समावेशन।

जैविक खाद प्रबन्धन

जैविक खाद जैसे गोबर की खाद, गोबर गैस की खाद, खलियाँ, प्रेसमड, शीरा व पशुजनित खाद के बारे में विस्तृत विवरण यहाँ दिया जा रहा है। अन्य जैविक खाद जैसे कम्पोस्ट, वर्मीकमोस्ट, हरीखाद तथा जैव उर्वरकों के बारे में विस्तृत विवरण में दिया गया है।

1. गोबर की खाद

हमारे प्रदेश में अधिकांश ग्रामीण क्षेत्र में ईंधन की कमी होने के कारण गोबर के कण्डे लाकर जलाते हैं और बहुमूल्य खाद नष्ट कर देते हैं। आज हमारा देश वैज्ञानिक दृष्टि से प्रगतिशील माना जाता है लेकिन गाँव में आज भी किसान बहुमूल्य खाद को आम रास्ता, घर के आसपास एवं खेत की मेड़ पर प्रतिदिन घर के कूड़ा करकट व गोबर के खुले वातावरण में इकट्‌ठा करता है उसकी कोई उपयोगिता नहीं की जाती है। परिणाम स्वरुप कुछ खाद तेज हवा से व जानवर निकलने से इधर–उध्‍ार बिखरकर नष्ट हो जाता है। खुले में पड़े रहने से तेज गर्मी के कारण पोषक तत्व नष्ट हो जाते हैं। वर्षा होने से जल में पोषक तत्व घुलकर बह जाते हैं। इस खुले पड़े खाद से वातावरण दूषित होता

है और उसमें कई तरह के रोग भी फैलते हैं। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि किसान गोबर की खाद का उपयोग कैसे व कब करें से अनभिज्ञ हैं। किसान गर्मी के महीनों में गोबर की खाद को खेत में छोटे–छोटे ढेर के रुप में खेत में डाल देते हैं। लेकिन इस विधि से खाद का उपयोग करने से कोई लाभ नहीं होता है, क्योंकि तेज गर्मी के कारण पोषक तत्व नष्ट हो जाते हैं। गोबर की खाद में 50 प्रतिशत अंश पशुमूत्र से प्राप्त होता है लेकिन कोई भी किसान पशुमूत्र को इकट्ठा कर खाद के गड्ढे तक नहीं डालते। पशुओं के नीचे मिट्टी, भूसा, गन्ने की पत्ती व धान की पुआल का बिछावन करना चाहिये ओर बिछावन हर दूसरे और तीसरे दिन खाद के गड्ढे में पहुँचाना चाहिये।

खाद बनाने की विधि

किसान भाई गोबर को जमीन के ऊपर ढेर लगाकर इकट्ठा करते हैं और गोबर बनाने की यह विधि वैज्ञानिक दृष्टि से उचित नहीं है अतः खाद बनाने के लिये आवश्यकतानुसार गड्ढे किसी ऊँचे स्थान पर खोद लेना चाहिये जहाँ पानी नहीं भरता हो। गड्ढे की गहराई 1.25 मीटर से अधिक नहीं रखें क्योंकि विघटन करने वाले जीवाणुओं को अधिक गहराई पर ऑक्सीजन नहीं मिल पाती है और सड़न प्रक्रिया सुचारु रुप से नहीं चलती है। गड्ढे की लम्बाई–चौड़ाई आवश्यकतानुसार 3X4 मीटर रखना चाहिये। गड्ढे का फर्श पक्का हो तो अच्छा रहता है, इससे पोषक तत्व रिस कर नीचे नहीं जा पाते। गड्ढा तैयार हो जाने पर उसमें मल–मूत्र, गोबर व बिछावन प्रतिदिन डालते रहना चाहिये। जब गड्ढा भरकर भूमि से आधा मीटर ऊँचा हो जाये तो 15 सेमी. मिट्टी की मोटी तह से ढ़क देना चाहिये। इस प्रकार 6 महीने में गोबर की खाद बनकर तैयार हो जायेगी। अच्छे गोबर की खाद में नाइट्रोजन (नत्रजन), स्फुर व पोटाश क्रमश : 0.5, 0.25 व 0.5 होती है। गोबर की खाद की गुणवत्ता बढ़ाने हेतु खाद प्रति टन 20 किग्रा फॉस्फोरस मिलाना चाहिये इससे खाद में अमोनिया के रुप में होने वाली हानि कम होगी तथा फॉस्फोरस की उपलब्धता बढ़ेगी।

खाद डालने का समय

खेत में खाद काफी पहले डालने से उसका प्रभाव काफी कम हो जाता है। हवा व तेज धूप द्वारा पोषक तत्व नष्ट हो जाते हैं। लिचिंग द्वारा पोषक तत्व नष्ट हो जाते हैं और कुछ पोषक तत्व घुलनशील अवस्था में भूमि में स्थिर हो जाते हैं। अतः गोबर की खाद को फसल बोने से लगभग 2 सप्ताह पहले खेत में डालकर मिला देना चाहिये।

खाद की मात्रा

गोबर की खाद की मात्रा खाद की उपलब्धता, मिट्टी की किस्म, फसल, उसकी किस्म, वर्षा, नमी तथा किसान की खाद खरीदने की क्षमता पर निर्भर करती है। साधरणतः 10 टन प्रति एकड़ खाद फसलों के लिये तथा 20 टन प्रति एकड़ खाद सब्जियों के लिये पर्याप्त होती है।

2. घरेलू कचरे से खाद

आपने देखा होगा कि हमारे देश के कस्बों व शहरों में कचरा सफाई व निष्पादन की विकट समस्या है, यदि कचरा सफाई पर एक दिन भी ध्यान नहीं दिया गया तो कचरे के ढेर लग ज़ाते हैं और स्थिति अत्यन्त भयानक होने लगती है क्योंकि कचरे के ढेर पर मक्खियाँ, मच्छर एवं अन्य हानिकारक कीटाणु पनपने लगते हैं जो रोग फैलाने में सहायक होते हैं। पेयजल भी प्रदूषित होने लगता है या सम्भावना बनी रहती है। गाँवों की स्थिति तो और भी खराब है, क्योंकि यहाँ पर कचरे के साथ पशु के मलमूत्र भी रास्ते व गलियों में फैले रहते हैं, सब्जियों व फलों के छिलके, अण्डों के छिलके, आम की गुठलियाँ, रसोई की जूठन, बासी रोटी, चावल, दाल, उबली चाय की पत्ती, आटे का छना हुआ चोकर, घर के बगीचे व आंगनबाड़ी से पेड़–पौधों की सड़ी पत्तियाँ, गोबर व पशु मूत्र आदि है। इस प्रकार के कचरों को जीवांश कचरा कहते हैं। निम्नलिखित प्रक्रियाओं द्वारा वर्मी (केंचुआ) खाद तैयार कर सकते हैं।

वर्मी कम्पोस्ट बनाने की प्रक्रिया

वर्मी कम्पोस्ट बनाने हेतु मुख्य सामग्री घास, पत्तियाँ, रसोईघर की जूठन, सब्जियों के छिलके व गोबर हैं। घर के पिछवाड़े में ईंट–चूना की एक टंकी बनाएँ स्थान के अनुसार टंकी की लम्बाई 2 मीटर, ऊँचाई व चौड़ाई 1 मीटर रखें। टंकी के पेंदे में ईंट के टुकड़े, मध्यम आकार की मिट्टी एवं बजरी की 5 सेमी तह बनायें। यह जल निकास में सहायक होती है। इसके ऊपर 10 सेमी की दोमट मिट्टी की तह बिछायें इसके बाद ऊपर 5 किलो मिट्टी को पानी में घोलकर छिड़कें। अपने क्षेत्र में उपलब्ध स्रोतों से 400–500 केंचुऐ इकट्ठे करके क्यारियों में रख दें। बाजार में वर्मीकल्चर केंचुए भी उपलब्ध हैं, इसका भी उपयोग किया जा सकता है। ऊपर से भूसा, पेड़ों की पत्तियाँ, सब्जियों के छिलके, रसोईघर की जूठन इत्यादि बिछा दें। अब इसके ऊपर थोड़ा सा गोबर का पानी छिड़क कर इसे बड़े पत्ती या अनुपयोगी कागज, गत्ते आदि से ढक दें। आवश्यकतानुसार समय–समय पर पानी

का छिड़काव करें। एक माह पश्चात् गत्ते, अखबार, हटाकर पुनः उपलब्ध जीवांश कचरे की 5–6 सेमी की तह एक दो दिन के अन्तराल से बिछाते रहें। प्रत्येक बिछावन के साथ उसे जल से सींचें। एक माह में पोषण पदार्थ जैसे– नत्रजन, स्फुर, पोटाश अन्य पोषक तत्व, वृद्धिवर्धक तत्व व रोग रोधक गुणों वाला वर्मी कम्पोस्ट उपलब्ध होता है। इस प्रकार की 2 मीटर लम्बी टंकी से दो माह में लगभग 65 किग्रा कम्पोस्ट उपलब्ध होता है। इस खाद को हमारे घर के बगीचे में, सब्जियों में, फल वृक्ष में, फूल के पौधों में, गमलों में या सजावट के पत्तीदार पौधों के लिये उपयोग कर सकते हैं। पौधों में जहाँ यह खाद देंगे वहाँ खाद के साथ केंचुओं के अण्डे भी होंगे जिनसे बाद में केंचुऐं निकलकर अपनी संख्या में वृद्धि करते हैं। नमी बनाये रखें और जैव कचरा पौधों की क्यारियों में देते रहें इससे केंचुए उसे भी खाद में परिवर्तित करते रहेंगे। इस विधि से प्राप्त कम्पोस्ट के उपयोग से फल–फूल प्रचुर मात्रा में प्राप्त होते हैं जो उच्च गुणवत्ता वाले होंगे। वर्मी कम्पोस्ट के उपयोग से पेड़ पौधों की कीट आदि जैसे हानिकारक कारकों के प्रति प्राकृतिक निरोधकता में वृद्धि होती है, अतः रासायनिक उर्वरकों पर होने वाले खर्च में कटौती के साथ–साथ पौध संरक्षण कार्य हेतु कीट व्याधि रसायनों के उपयोग में भी कटौती सम्भव हो जाती है।

3. गोबर गैस स्लरी की खाद

गोबर गैस संयंत्र एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा स्थूल कार्बनिक अवशिष्टों से ज्वलनशील गैसों के रुप में ऊर्जा उत्पन्न होती है। इस गैस संयंत्र में पशुओं के गोबर और अन्य सैल्यूलोज युक्त सामग्रियों को कुछ दिनों के लिये अवायुवीय दशाओं अर्थात् ऑक्सीजन के अभाव में सड़ने दिया जाता है। इन दशाओं में मुख्य रुप से मिथेन, हाईड्रोजन और कार्बन डाईआक्साइड का मिश्रण तैयार होता है। जिसका उपयोग खाना बनाने के लिये ईंधन और अन्य कार्यों के लिये किया जाता है। ऊर्जा प्राप्त करने के उपरान्त बचे अवशिष्ट पदार्थ से पोषक खाद प्राप्त होती है।

बायोगैस संयंत्र में गोबर की पाचन क्रिया के बाद 25 प्रतिशत ठोस पदार्थ का रुपान्तर गैस के रुप में होता है और 75 प्रतिशत ठोस पदार्थ का रुपान्तर खाद के रुप में होता है। 2 घनमीटर के गैस संयंत्र में जिसमें करीब 50 किलो गोबर प्रतिदिन एवं 18.25 टन गोबर एक वर्ष में डाला जाता है, उस गोबर से नमीयुक्त करीब 9.2 टन बायोगैस स्लरी का खाद प्राप्त होता है।

यह खाद खेती के लिये अति उत्तम खाद होती है। इसमें नाइट्रोजन 1.5 से 2 प्रतिशत,

फास्फोरस 1.0 प्रतिशत एवं पोटाश 1.0 प्रतिशत तक होता है। बायोगैस संयंत्र से जब स्लरी के रुप में खाद बाहर आता है तब जितना नाइट्रोजन गोबर में होता है उतना ही नाइट्रोजन स्लरी में होता है, परन्तु संयंत्र में पाचन क्रिया के दौरान कार्बन का रुपान्तर गैसों में होने से कार्बन की मात्रा कम होने से कार्बन नाइट्रोजन अनुपात कम हो जाता है व इससे नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ी हुई प्रतीत होती है।

बायोगैस संयंत्र से निकली पतली स्लरी में 20 प्रतिशत नाइट्रोजन, अमोनिया के रुप में होता है। अतः यदि इसका तुरन्त उपयोग खेत में नालियाँ बनाकर अथवा सिंचाई के पानी में मिलाकर खेत में छोड़कर किया जाए तो इसका लाभ रासायनिक खाद की तरह से फसल पर तुरन्त होता है और उत्पादन में 10 से 20 प्रतिशत तक बढ़त हो सकती है। स्लरी खाद को सुखाने के बाद उसमें से नाइट्रोजन का कुछ भाग हवा में उड़ जाता है। यह खाद सिंचाई रहित खेती में एक हैक्टेयर में करीब 5 टन व सिंचाई वाली खेती में 10 टन प्रति हैक्टेयर मात्रा में डाला जाता है। बायोगैस स्लरी खाद में भी नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश इन मुख्य तत्वों के अतिरिक्त सूक्ष्म पोषक तत्व एवं ह्यूमस होता है जिससे मिट्टी की उर्वरा शक्ति में वृद्धि होती है, जलधारण क्षमता बढ़ती है और सूक्ष्म जीवाणु बढ़ते हैं। इस खाद के उपयोग से भी अन्य जैविक खाद की तरह 3 वर्षों तक अन्य उपयोगी तत्व फसलों को उपलब्ध होते रहते हैं व एक बार खाद देने से 3 वर्ष तक अच्छी फसल प्राप्त की जा सकती है।

स्लरी का संग्रहण

यदि गोबर गैस संयंत्र घर के पास व खेत से दूर है तब पतली स्लरी का संग्रहण करने के लिये बहुत जगह लगती है व पतली स्लरी का स्थानान्तरण भी कठिन होता है ऐसी अवस्था में स्लरी को सुखाना अत्यन्त आवश्यक है। इसमें बायोगैस को निकास कक्ष से जोड़कर 2 घनमीटर के संयंत्र के लिये 1.65 मीटर X 0.6 मीटर X 0.5 मीटर के दो सीमेन्ट के टैंक बनाये जाते हैं इसके दूसरी तरफ छना हुआ पानी एकत्र करने हेतु एक पक्का गड्ढा बनाया जाता है। फिल्ट्रेशन टैंक के नीचे 15 सेमी मोटाई का कचरा, कूड़ा कचरा, हरा कचरा इत्यादि डाला जाता है। इस पर निकास कक्ष से जब द्रव रुप की स्लरी गिरती है तब स्लरी का पानी कचरे के तह से छनकर नीचे गड्ढे में एकत्रित हो जाता है। इस तरह एकत्रित पानी बायोगैस संयंत्र में गोबर की भराई के समय डाला जाता है उसका 2/3 हिस्सा गड्ढे में पुनः एकत्रित हो जाता है। इसे गोबर के साथ मिलाकर

पुनः संयंत्र में डालने से गैस उत्पादन बढ़ जाता है इसके आलवा इसमें सभी पोषक तत्व घुलनशील अवस्था में होते हैं। अतः इसका छिड़काव पौधों पर करने से पौधों का विकास अच्छा होता है, कीड़े मरते हैं एवं फसल में वृद्धि होती है। करीब 15–20 दिन में पहला टैंक भर जाता है तब इस टैंक को ढककर स्लरी का निकास दूसरे टैंक में खोल दिया जाता है। जब तक दूसरा टैंक स्लरी से भरता है तब पहले टैंक में स्लरी सूख जाती है व 25–30 प्रतिशत नमी वाला खाद टैंक से बाहर निकाल लिया जाता है। इसका भण्डारण अलग से गड्ढे में किया जाता है अथवा इसको बैलगाड़ी में भरकर खेत तक पहुँचाना आसान होता है।

फिल्ट्रेशन टैंक की मदद से बायोगैस की स्लरी का अधिक संग्रहण किया जा सकता है व फिल्ट्रेट पानी के बाहर निकलने व उसका संयंत्र में पुनः उपयोग करने से पानी की भी बचत होती है।

इस प्रकार बायोगैस संयंत्र से बायोगैस द्वारा ईंधन की समस्या का समाधान हो ही जाता है। साथ में स्लरी के रुप में उत्तम खाद भी खेती के लिये प्राप्त होता है। अतः बायोगैस संयंत्र से किसान को दोबारा लाभ मिलता है।

गोबर गैस के मुख्य लाभ

- कार्बनिक–अवशिष्टों से बने पोषक तत्वों की हानि से ईंधन गैस और खाद प्राप्त होती है, इससे जलाने की लकड़ी में बचत होती है।
- संयंत्र पूरी तरह से स्वास्थ्यप्रद और शुद्ध दशाओं में कार्य करता है। इससे गंदी महक नहीं आती। मक्खियों और मच्छरों का जनन रुक जाता है।
- कम्पोस्ट विधि की तुलना में इस विधि में नाइट्रोजन की हानि बहुत कम होती है।

4. खलियों के खाद

हमारे देश में अनेक किस्म की खलियाँ तैयार की जाती हैं जिनका इस्तेमाल सांद्रित कार्बनिक खाद के रुप में किया जाता है। इसमें पोषक तत्व अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। मूंगफली की खली, तिल की खली, सरसों की खली जिसका इस्तेमाल जानवरों के आहार के रुप में किया जता है। इसका उपयोग खाद के रुप में नहीं करना चाहिये। अन्य अखाद्य खलियाँ जैसे– अरण्डी की खली, नीम की खली, करंज की खली जो कि विषाक्त पदार्थें की उपस्थिति के कारण पशु आहार के

लिये उपयुक्त नहीं होती, उनका खाद के रुप में उपयोग लाभदायक रहता है। खलियों में नाइट्रोजन की मात्रा में भिन्नता पाई जाती है।

खलियों में पाई जाने वाली नाइट्रोजन का 70–80 प्रतिशत मात्रा पौधों को शीघ्र प्राप्त होता है किन्तु इन्हें फसल की बुवाई के 15–25 दिन पहले उपयोग करना चाहिये। उपयोग करने से पूर्व इन्हें अच्छी तरह पाऊडर के रुप में बना लेना चाहिये, ताकि इनका एक साथ इस्तेमाल किया जा सके। लम्बे समय की फसल जैसे गन्ना में इनका उपयोग खड़ी फसल में भी कर सकते हैं। सामान्य तौर पर 10–30 क्वि./है. खलियों का उपयोग कर सकते हैं। वैसे तो खलियों की मात्रा फसल, भूमि का प्रकार, जलवायु तथा खली की उपलब्धता पर निर्भर करती है।

5. मुर्गी की खाद

मुर्गी की खाद में 1/3 भाग बीट, 1/3 भाग दाना, भूसा व पेशाब आदि का मिश्रण होता है, उसमें 1.1 प्रतिशत नत्रजन, 1.5 प्रतिशत स्फुर व 1.6 प्रतिशत पोटाश तत्व के अतिरिक्त अन्य आवश्यक तत्व कैल्शियम, मैग्नीशियम, आयरन व सोडियम भी पाये जाते हैं। इस खाद से पौधों में रोगरोधी क्षमता में वृद्धि होती है। 100 अण्डे देने वाली मुर्गियों से एक वर्ष में 4 टन मुर्गी खाद प्राप्त होती है जबकि माँस हेतु 100 मुर्गियों से 1 वर्ष में 1 टन खाद प्राप्त होती है। उपयोग के समय मृदा में पर्याप्त नमी हो व अन्य जीवांश खादों के साथ मिलाकर 1.5 टन प्रति हैक्टेयर की दर से प्रयोग करें।

6. पशुजनित खादें

पशु जनित उत्पाद का खाद के रुप में भी इस्तेमाल होता है। इसमें पशु कंकाल से तैयार खाद या भूचड़खाने से प्राप्त पदार्थ जैसे– शुष्क रक्त, माँस की खाल, सींग व खुर की खाद आदि सर्वाधिक प्रचलित है। शुष्क रक्त या रक्त की खाद में नाइट्रोजन की मात्रा अधिक होती है और यह शीघ्र कारगर होती है और सभी फसलों पर लाभकारी होती है। इनका उपयोग खलियों की भाँति ही करना चाहिये। मछली भोजन के रुप में पाई जाती है। नाइट्रोजन के अलावा इसमें एक अच्छे अनुपात में फास्फोरस भी पाया जता है। मछली की खाद से पोषक तत्वों की पूर्ति शीघ्र होती है और इनका उपयोग सभी फसलों में किया जा सकता है। पक्षियों द्वारा विसर्जित मल–मूत्र, मैला आदि पशु और मानव जनित अवशिष्ट पदार्थों की श्रेणी में आते हैं।

7. तालाब की सड़ी मिट्टी की खाद

पुराने तालाब की सड़ी मिट्टी का प्रयोग जीवांश खाद के स्रोत के रुप में किया जा सकता है जिससे मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार के साथ–साथ उर्वरता में भी सुधार आता है। वर्षा ऋतु में शहरी व ग्रामीण क्षेत्रों की सभी भूमियों से जल बहकर तालाबों में इकट्ठा होता है। पानी के साथ–साथ मल–मूत्र, खेतों के उर्वर अंश, पशु तथा पौधों के अवशेष भी तालाबों में एकत्रित होते रहते हैं। जब पानी कुछ स्थिर हो जाता है, तो घुलित मिट्टी आदि व अन्य पदार्थ नीचे पेंदी में बैठ जाते हैं। पेंदी में बैठी ऐसी मिट्टी को तालाब मिट्टी खाद अथवा टैंकेज कहते हैं। तालाबों की सतह की 12 इंच मोटी मिट्टी अधिक उर्वरक होती है। इस मिट्टी में 1.0 से 4.0 प्रतिशत तक नमी पाई जाती है तथा स्फुर भी प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। तालाब की मिट्टी की खाद का खेत में 25–30 टन प्रति हैक्टेयर उपयोग किया जा सकता है।

कम्पोस्ट खाद

कम्पोस्ट को "कूड़ा खाद" कहते हैं। पौधों के अवशेष पदार्थ, घर का कूड़ा कचरा, मनुष्य का मल, पशुओं का गोबर आदि का जीवाणु द्वारा विशेष परिस्थिति में विच्छेदन होने से यह खाद बनती है। अच्छा कम्पोस्ट खाद गंदरहित भूरे या भूरे काले रंग का भुरभुरा पदार्थ होता है। इसके 0.5 से 1.0 प्रतिशत पोटाश एवं अन्य गौण पोषक तत्व होते हैं।

कम्पोस्ट खाद का महत्व

हमारी पारम्परिक खेती में कचरा, गोबर, जानवरों का मलमूत्र व अन्य वनस्पतिजन्य कचरे को एकत्रित करके खाद बनाने की प्रथा प्रचलित थी, जिसमें पौधे के लिये आवश्यक सभी पोषक तत्व तथा मिट्टी में जैविक पदार्थों का विघटन करने वाले सभी प्रकार के सूक्ष्मजीव प्रचुर मात्रा में होते थे। इस प्रकार जैविक खाद के इस्तेमाल से मिट्टी की प्राकृतिक उपजाऊ शक्ति का विकास होता था एवं मिट्टी अधिक समय तक अच्छी फसल देने में सक्षम रहती थी। खाद बनाने का कच्चा माल सभी किसानों के खेत में ही उपलब्ध होने के कारण उसे बनाने में विशेष खर्च नहीं होता था। जैविक खाद फसल और मिट्टी दोनों के लिये लाभकारी है, यह समझते हुये भी आजकल किसान खाद बनाने व खेती में उसका उपयोग करने के प्रति उदासीन हैं। इसके सम्भावित कारण निम्नलिखित हैं :-

जैविक खाद बनाने में श्रम एवं समय खर्च होता है, जबकि रासायनिक खाद आसानी से बाजार में उपलब्ध है हाँलाकि उसे प्राप्त करने के लिये पैसा खर्च करना होता है।

जैविक खाद का असर धीरे-धीरे किन्तु लम्बे समय के लिये होता है जबकि रासायनिक खाद का असर कम समय के लिये फसलों पर तुरन्त दिखाई देता है।

कम्पोस्ट खाद बनाने की विधियाँ

पिछले अध्याय में जैविक खादों के लाभ, घटक तथा कुछ जैविक खाद का प्रबन्धन कैसे किया जाएँ, के बारे में बताया गया है। कम्पोस्ट खाद भी जैविक खाद है, अतः कम्पोस्ट खाद बनाने की आसान विधियाँ विकसित हो चुकी हैं वे इस प्रकार हैं –

1. गड्ढा विधि

ऊँची जगह पर जहाँ पानी स्रोत पास हो गड्ढे का आकार 3 मीटर लम्बा X 2 मीटर चौड़ा X 1 मीटर गहरा रखें। खोदने के बाद गड्ढे को गोबर से लीप दें। इसके बाद पोषक तत्वों को सोखने के लिये 10 से 12 सेमी की सेन्द्रीय पदार्थों की आधार पर्त बिछायें। इस आधार पर्त पर 20 सेमी मोटी पहली परत गोशाला की बिछावन डालें, गोबर एवं गोबर से सना हुआ पुआल गन्ने का छिलका, अन्य कचरा तथा पत्तियाँ बिछायें। 50 प्रतिशत गोबर एवं गौ मूत्र का पानी सोखने की क्षमता का उपयोग हो सके। अब 100 किग्रा भुरभुरी मिट्टी में 3 किग्रा अधपका गोबर कम्पोस्ट तथा 250 ग्राम सुपरफॉस्फेट या 3–5 किग्रा राक फॉस्फेट मिलाकर मिश्रण बनायें। इस मिश्रण की 2–3 सेमी पर्त बिछायें और पानी से गीला कर दें। इन पर्तों की पुनरावृत्ति जब तक करते रहें, तब तक गड्ढे की पूरी सामग्री अच्छी तरह हिलाते हुये पलटें।

2. ढेर विधि

इस विधि में कम्पोस्ट बनाने के लिये जमीन के ऊपर कोठी बनाते हैं। ऊँची व समतल भूमि पर 3 मीटर लम्बी X 2 मीटर चौड़ी X 1 मीटर ऊँची कोठी, अनुपयोगी लकड़ी की पटिया, चटाईयाँ एवं ईंटों से बनायी जा सकती है। 2 सेमी ईंटों की तह जमा देने से ढेर लगाने में सुविधा होती है। इस विधि में भी भरने का तरीका गड्ढा विधि जैसा ही है लेकिन इस विधि में गोबर के घोल की अधिक आवश्यकता होती है।

ऊपर का हिस्सा ढाल देते हुये भरें तथा मिट्टी, भूसे के मिश्रण से 5 सेमी प्लास्टर कर गोबर से लीप दें। हर 4–6 सप्ताह में खाद को पलटते रहें और नमी बनाये रखने हेतु पानी का छिड़काव करते रहें और पुनः लीप कर बंद कर दें इस प्रकार 3 माह में कम्पोस्ट बनकर तैयार हो जाता है।

3. इन्दौर विधि

यह पद्धति सर्वप्रथम 1931 में अलवर्ट हावर्ड और यशवंत बाड ने इन्दौर में विकसित की थी एवं इसी आधार पर इसे इन्दौर विधि/पद्धति नाम से जाना जाता है।

संरचना :

इस पद्धति में कम्पोस्ट खाद बनाने के लिए कम से कम 9 फीट लम्बा, 5 फीट चौड़ा एवं 3 फीट गहरा गड्ढा बनाया जाता है, गड्ढे की लम्बाई सुविधानुसार 21 फीट तक रखी जा सकती है। इस गड्ढे को लम्बवत 3 से 6 समान भागों में बाँट दिया जाता है। प्रत्येक हिस्सा अलग–अलग भरा जाता है एवं अंतिम हिस्सा खाद पलटने के लिए खाली छोड़ा जाता है।

गड्ढों की भराई :

गड्ढों के प्रत्येक भाग में कचरा अलग–अलग परतों में भरा जाये। पहली परत में पशु कोठों से लाया गया फसल अवशेष एवं कचरे की एक समान 3 इंच मोटी परत बिछाई जाती है। इसके पश्चात् पशु कोठों से एकत्रित किया हुआ पशुमूत्र मिश्रण (कीचड़) की एक तह उसके ऊपर फैला दी जाती है। दूसरी परत के रुप में 2 इंच गोबर और पशु कोठों की मूत्र मिश्रित मिट्टी की एक समान परत बिछाकर पर्याप्त पानी का छिड़काव करें। इस प्रकार 8 से 10 परत में गड्ढा जमीन से 1 फीट ऊपर तक भर जायेगा। सबसे ऊपर की परत पशुमूत्र एवं राख मिश्रित पशुकोठों की गीली मिट्टी की होती है। इस प्रकार एक हिस्से को खाद पलटने के लिए छोड़ दें एवं शेष हिस्से को भर दें। गड्ढे भरने का कार्य दो तीन दिन में पूर्ण कर लिया जाता है। सुबह शाम पानी का छिड़काव करते रहें, ताकि नमी बनी रहे।

कम्पोस्ट को पलटना :

धीरे–धीरे गड्ढों में भरा हुआ कचरा, दबकर जमीन की सतह के बराबर आता जाता है। 15 दिन के बाद जो खाली छोड़ा था, इसमें पूर्व में भरे गये हिस्से का पूरा कचरा पलट दें। इस क्रिया में ऊपर का कचरा नीचें एवं नीचे का कचरा ऊपर एवं मध्य का कचरा किनारे हो जायेगा। तत्पश्चात् अच्छी तरह से पानी डालकर इसे नम कर दें। इस क्रिया के बाद गीली मिट्टी से पुनः भरे हुए गड्ढे को लीप कर ढक दें। इसी प्रकार सभी भागों का कचरा पलटें। इस प्रकार 15 दिन के अन्तराल पर 2 से 3 बार पलटने की क्रिया करें एवं दो माह पश्चात् अंतिम पलटाई करें। तीन माह उपरान्त अच्छी पकी खाद तैयार हो जाती है। यह खाद काले रंग की मिट्टी जैसी गंध वाली होती है। गाँव में जो परम्परागत खाद के गड्ढे होते हैं उनका ठीक प्रकार से नियोजन इन्दौर पद्धति के आधार पर किया जा सकता है। इस पद्धति में जमीन के ऊपर ढेर बनाकर भी खाद बनाई जा सकती है।

4. रायपुर विधि

गाँव में परम्परागत तरीके से जमीन में गड्ढा खोदकर उसमें गोबर व कूड़ा डाला जाता है, जिन्हें डालने का कोई क्रम नहीं होता तथा बेतरकीब विधि से डाला जाता है जिससे उसे सड़ने में अधिक समय लगता है। इन्हें भरते समय पानी छिड़कने का भी ध्यान नहीं दिया जाता है। सूखे के मौसम में जहाँ एक ओर खाद के गड्ढों में पानी बिल्कुल नहीं डाला जाता वहीं दूसरी ओर वर्षा ऋतु

में गाँव में गली/सड़क के किनारे बने खाद के गड्ढों में अत्यधिक मात्रा में पानी भरा रहता है, जिससे अच्छी सड़ी हुई उत्तम क्वालिटी की खाद तैयार नहीं होती बल्कि वर्षा ऋतु में गली व सड़क के किनारे जगह–जगह खाद के गड्ढों में गन्दा पानी भरा रहने से गन्दगी का वातावरण निर्मित होता है, जिससे विभिन्न बीमारियों के फैलने की सम्भावना बनी रहती है। किन्तु रायपुर विधि से भू–नाडेप खाद बनाने के तरीके से परम्परागत तरीके के विपरीत बिना गड्ढा खोदे जमीन पर एक निश्चित आकार का 12 फीट लम्बा, 5 फीट चौड़ा अथवा उपलब्ध जगह के अनुसार भी लम्बाई का किन्तु 5 फीट चौड़ा ले–आउट देकर उस पर 6 इंच मोटी 4–5 प्रतिशत गोबर के घोल में डूबा हुआ जीवांश कचरा बिछायें। उस पर अच्छी तरह चलना चाहिये ताकि वह अच्छे से दब सके। प्रत्येक परत पर खेत की बारीक भुरभुरी मिट्टी 50–60 किलो की परत बिछायें। जहाँ बायोमास सिर्फ पानी में भिगोकर डाला जाता है, उसके ऊपर पूर्ववत् गोबर घोल निर्मित बायोमास की परत बिछाई जाती है। इस तरह लगभग 5 फीट ऊँचाई तक गीले बायोमास की परत बिछायी जाती है। इसके बाद इस आयताकार ढेर को सब तरफ से मिट्टी से लेप कर दिया जाता है। बंद करने के दूसरे तीसरे दिन जब गीली मिट्टी कुछ सख्त हो जाये तब गोलाकार या आयताकार टीन के डिब्बे से ढेर की लम्बाई व चौड़ाई में 9–9 इंच के अन्तर से 7–7 इंच के छेद करें। उक्त छिद्रों से हवा का आवागमन होगा और आवश्यकता पड़ने पर पानी भी डाला जा सकता है। ताकि बायोमास में पर्याप्त नमी रहे और सड़न क्रिया अच्छी तरह से हो सके।

इस तरह से भरा गया बायोमास 3 से 4 माह के भीतर भली–भाँति सड़ जाता है। इस प्रकार दुर्गन्ध रहित भुरभुरी क्वालिटी की जैविक खाद तैयार हो जाती है। वहीं दूसरी ओर गाँवों में गंदगी कम करने में मदद मिलती है जो जन–स्वास्थ्य के लिये एक अच्छा उपाय है।

वर्मी कम्पोस्ट

केंचुओं की मदद से कचरे को खाद में परिवर्तित करने हेतु केंचुओं को नियंत्रित वातावरण में पाला जाता है। इस क्रिया को वर्मीकल्चर कहते हैं, केंचुओं द्वारा कचरा खाकर जो कास्ट निकलती है उसे एकत्रित रुप से वर्मी कम्पोस्ट कहते हैं।

केंचुआ का महत्व

केंचुआ कृषि में अपना महत्वपूर्ण योगदान भूमि सुधार के रुप में देता है। इनकी क्रियाशीलता मृदा में स्वतः चलती रहती है। प्राचीन समय में प्रायः भूमि में केंचुएं पाये जाते थे तथा वर्षा के समय भूमि पर देखे जाते थे। परन्तु आधुनिक खेती में अधिक रासायनिक खादों तथा कीटनाशकों के लगातार प्रयोगों से केंचुओं की संख्या में भारी कमी आयी है। जिस भूमि में केंचुएं नहीं पाये जाते हैं उनसे यह स्पष्ट होता है कि मिट्टी अब अपनी उर्वरा शक्ति खो रही है तथा उसका ऊसर भूमि के रुप में परिवर्तन हो रहा है।

केंचुआ मिट्टी में पाये जाने वाले जीवों में सबसे प्रमुख है। ये अपने आहार के रुप में मिट्टी तथा कच्चे जीवांश को निगलकर अपनी पाचन नलिका से गुजारते हैं जिससे वह महीन कम्पोस्ट में परिवर्तित हो जाते हैं और अपने शरीर से बाहर छोटी–छोटी कास्टिंग्स के रुप में निकालते हैं। इसी कम्पोस्ट को वर्मी कम्पोस्ट कहा जाता है। केंचुओं का प्रयोग कर व्यापारिक स्तर पर खेत पर ही कम्पोस्ट बनाया जाना सम्भव है। इस विधि द्वारा कम्पोस्ट मात्र 45 दिन में तैयार हो जाता है।

केंचुओं का पालन 'कृमि सम्वर्धन' या 'वर्मी कल्चर' कहलाता है। अब तक केंचुओं की 4500 प्रजातियाँ विश्व के विभिन्न भागों में बतायी जा चुकी हैं। केंचुए दो प्रकार के हैं– जलीय व स्थलीय।

आज केंचुओं की कुछ ऐसी प्रजातियाँ विकसित कर ली गई हैं जिनको पालकर आप प्रतिदिन के कूड़ा–करवट को अच्छी खाद 'वर्मी कम्पोस्ट' में बदल सकते हैं। यह खाद इतनी शक्तिशाली होती है कि इसमें पौधों द्वारा चाहे गये सभी पोषक तत्व भरपूर मात्रा में मौजूद होते हैं तथा पौधे इनको तुरन्त ग्रहण कर लेते हैं।

वर्मीकल्चर

वर्मीकल्चर लकड़ी के बॉक्स, प्लास्टिक के क्रेट, प्लास्टिक की बाल्टी अथवा ईंट व सीमेन्ट के छोटे टैंक में किया जा सकता है। यह एक कम गहरे गड्ढे में भी किया जा सकता है। वर्मीकल्चर के लिए 20 लीटर क्षमता की बाल्टी अथवा 45 सेमी.x45 सेमी.x30 सेमी. का लकड़ी का डिब्बा लिया जा सकता है। यदि गड्ढे अथवा टैंक में वर्मी कल्चर किया जाना है तो वह छायादार जगह में होना चाहिए और उस स्थान पर पानी एकत्र नहीं होना चाहिए।

वर्मीकल्चर हेतु उपयुक्त पात्र का चुनाव करने के बाद उसमें छोटे–छोटे छिद्र कर दिये जाते हैं ताकि उससे अतिरिक्त बाहर पानी निकल जाये। इसके बाद पात्र में वर्मी बैड तैयार किया जाता है। वर्मी बैड में सबसे नीचे वाले परत में छोटे–छोटे पत्थर ईंट के टुकड़े व मोटी रेत 3.5 सेमी. की मोटाई तक डाली जाती है। ताकि पानी का वहन ठीक प्रकार से हो। इसके बाद इसमें मिट्टी का एक परत दिया जाता है जो कम से कम 15 सेमी. मोटाई का होना चाहिए। फिर इसे अच्छी तरह गीला किया जाता है। यदि सिर्फ एपीजेइक जाति अथवा एक्सोटिक केंचुएं पाले जा रहे हैं तो मिट्टी के मोटे परत की आवश्यकता नहीं है, पर जब एपीजेईक और एनेसिक दोनों जाति के केंचुएं एक साथ पाले जाते हैं तब मिट्टी का परत आवश्यक है। इसके लिये अपने आस–पास के परिसर से एकत्र किये गये करीब 100 केंचुएं मिट्टी के परत में छोड़ दिये जाते हैं। इसके ऊपर ताजे गोबर के छोटे–छोटे लड्डू जैसे बनाकर रख दिए जाते हैं। अब पूरे बॉक्स को लगभग 10 सेमी. मोटे सूखे कचरे की तह से ढक दिया जाता है। इस प्रकार बने वर्मीबैड को जूट की थैली के आवरण से ढक दिया जाता है। इस पर थोड़ा पानी छिड़क कर गीला किया जाता है। बहुत अधिक पानी डालना आवश्यक नहीं है। इस प्रकार 30 दिन तक वर्मीबैड में नमी रखना है और उसकी पक्षियों, मुर्गियों, मेंढक आदि से रक्षा करनी है। इस समय में केंचुओं का विकास और प्रजनन होता है।

केंचुओं को भोजन देना

30 दिन बाद 31 वें दिन वर्मीबैड में थोड़ा–थोड़ा जैविक कचरा समान रुप से फैला सकते हैं कचरे की तह की मोटाई 5 सेमी से अधिक मोटी नहीं होनी चाहिये, अन्यथा कचरे के सड़ने से जो गर्मी उत्पन्न होगी उससे केंचुओं को नुकसान हो सकता है। एक सप्ताह में दो बार कचरा वर्मीबैड पर डाला जा सकता है। इस समय भी वर्मीबैड में 50–50 प्रतिशत नमी बनाये रखना आवश्यक है।

30 दिन तक इस प्रकार केंचुओं को भोजन देते हैं। 30 दिन बाद भोजन देना बंद कर दें और केंचुओं के बॉक्स को ढककर रख दें। ढक कर रखना केंचुओं की सुरक्षा के लिए अनिवार्य है पर इस तरह से ढके कि बॉक्स में हवा का वहन ठीक प्रकार से होता रहे।

खाद निकालना

भोजन देने के 30–40 दिन बाद केंचुओं द्वारा पूर्ण जैविक पदार्थ/कचरा काले रंग के दानेदार वर्मीकास्ट में बदल जाता है। वर्मीकम्पोस्ट, वर्मीकास्ट एवं पूर्णतः सड़े हुए कचरे की खाद का मिश्रण होता है। वर्मीकम्पोस्ट बन जाने के बाद केंचुओं के कल्चर बॉक्स में पानी देना बंद कर दिया जाता है। नमी की कमी की वजह से केंचुएं बॉक्स में नीचे की ओर चले जाते हैं, इस समय खाद को ऊपर से निकालकर अलग से एक पॉलीथीन पर छोटे ढेर के रुप में निकाल लिया जाता है। इस ढेर को भी थोड़ी देर धूप में रखा जाता है ताकि केंचुएं नीचे की ओर चले जायें। ऊपर का कम्पोस्ट अलग कर लिया जाता है। नीचे के कम्पोस्ट को केंचुओं सहित पुनः कल्चर बॉक्स में डालकर दूसरा चक्र शुरु कर दिया जाता है।

अधिक मात्रा में केंचुआ खाद का निर्माण

कल्चर बॉक्स में केंचुएं को बढ़ाने के बाद अधिक मात्रा में कचरे का उपयोग करके वर्मीकम्पोस्ट बनाया जा सकता है इसके लिये एपीजेईक किस्म के केंचुएं उपयोग में लाये जा सकते हैं।

अधिक मात्रा में खाद बनाने के लिये सर्वप्रथम छायादार स्थान का चुनाव करना आवश्यक है। यदि खेत अथवा बाग–बगीचे में छायादार वृक्षों की कतारें हैं तो उनके नीचे केंचुआ खाद के लिये वर्मीबैड बनाये जा सकते हैं। अन्यथा खेत के किनारे पर 6–8 फीट ऊँचे बाँस अथवा डंडे गाड़कर ऊपर घास का छप्पर डालकर कृत्रिम शेड बनाया जा सकता है। अधिक मात्रा में खाद बनाने के लिये वर्मीबैड की चौड़ाई 3 फीट से अधिक एवं ऊँचाई 1 फीट से अधिक नहीं होना चाहिए। लम्बाई स्थान एवं कचरे की उपलब्धता के आधार पर कितनी भी हो सकती है किन्तु वर्मीबैड बनाने का स्थान धरातल से थोड़े ऊँचाई वाले स्थान पर होना चाहिए ताकि आस–पास का पानी उसमें एकत्र न हो सके।

वर्मीबैड बनाना

जमीन पर वर्मीबैड बनाने के लिये सर्वप्रथम सूखी डंठलों एवं कचरे को बैड की लम्बाई–चौड़ाई के आकार में बिछा दें। इस पर सब प्रकार के मिश्रित कचरे, जिसमें सूखा कचरा, हरा कचरा, किचन वेस्ट, घास, राख इत्यादि मिश्रित हो, उसकी करीब 4 इंच मोटी परत बिछा दें। इस पर अच्छी तरह

पानी देकर उसे गीला कर दें। इसके ऊपर सड़ा हुआ अथवा सूखे गोबर के खाद की 3–4 इंच मोटी परत बिछा दें। इसे भी पानी से गीला कर दें। पानी का हल्का–हल्का छिड़काव करना है बहुत अधिक पानी डालना आवश्यक नहीं। इस पर 1 वर्गमीटर में 100 के हिसाब से स्थानीय अथवा एक्सोटिक प्रजाति के जो भी केंचुएं उपलब्ध हो वे छोड़े जा सकते हैं। इसके ऊपर पुनः हरी पत्तियों का 2–3 इंच पतला परत देकर पूरे वर्मीबैड को सूखी घास अथवा टाट की बोरी से ढक दिया जाता है। मेंढक, मुर्गियों अथवा अन्य पक्षियों एवं लाल चीटिंयों से वर्मीबैड को बचाना आवश्यक है।

इस प्रकार वर्मीबैड बनाने के बाद पुनः कचरा डालने की आवश्यकता नहीं है। इस वर्मीबैड से कुछ दूरी पर इसी तरह कचरा एकत्र करके दूसरा वर्मीबैड तैयार कर सकते हैं। करीब 40–60 दिन बाद जब पहले वर्मीबैड खाद तैयार हो जाता है, तब उसमें पानी देना बंद कर देते हैं व कल्चर बॉक्स की तरह ही इसमें से धीरे–धीरे ऊपर का खाद निकाल लिया जाता है। नीचे की तह खाद जिसमें सारे केंचुएं होते हैं उसे दूसरे वर्मीबैड. पर डाल दिया जाता है ताकि उसमें वर्मीकम्पोस्ट की क्रिया आरम्भ हो जाये। ताजे निकाले गये वर्मीकम्पोस्ट के ढेर को भी वर्मीबैड के नजदीक ही रखा जाता है व उसमें पानी देना बंद कर देते हैं। नमी की कमी की वजह से उसमें से केंचुएं धीरे–धीरे नजदीक के वर्मीबैड में चले जाते हैं वर्मीकम्पोस्ट खेत में डालने के लिए तैयार हो जाता है। इस खाद में जो केंचुएं के छोटे–छोटे अण्डे व बच्चे होते हैं उनसे जमीन में प्राकृतिक रुप से केंचुओं की संख्या बढ़ती है।

यदि घर अथवा खेत में थोड़ा–थोड़ा कचरा एकत्र होता है तब बायोडंग पद्धति के अथवा चार गड्ढे के चक्रीय तंत्र का प्रयोग करके भी अच्छा वर्मीकम्पोस्ट तैयार किया जा सकता है।

यदि कचरे व स्थान की उपलब्धता अधिक हो व बड़ी मात्रा में कम्पोस्ट तैयार करना हो तब छायादार जगह में पहले बायोडंग बनाकर एक महीने बाद वर्मीबैड तैयार करके खाद बनाया जा सकता है। इस पद्धति से व्यावसायिक स्तर पर भी खाद बनायी जा सकता है।

वर्मीकम्पोस्ट में विभिन्न तत्वों की मात्रा

वर्मीकम्पोस्ट में साधारण मृदा की तुलना में 5 गुना अधिक नाइट्रोजन, 7 गुना अधिक फॉस्फेट, 7 गुना अधिक पोटाश, 2 गुना अधिक मैग्नीशियम व कैल्शियम होते हैं। प्रयोगशाला जाँच करने पर विभिन्न पोषक तत्वों की मात्रा इस प्रकार पाई जाती है –

नाइट्रोजन	–	1.0 – 2.25	प्रतिशत
फास्फोरस	–	1.0 – 1.50	प्रतिशत
पोटाश	–	2.0 – 3.00	प्रतिशत
सल्फर	–	2.5 – 3.00	प्रतिशत

वर्मीवाश बनाना

यह पत्तियों पर छिड़कने के लिए छिड़काव के रुप में तैयार किया जाता है। यह 10–20 लीटर धारण क्षमता वाली एक प्लास्टिक की बाल्टी अथवा मिट्टी का रंजन/मटका जिसमें टोटी लगी हो, उसमें बनाया जा सकता है। वर्मीवाश बनाने के लिए बाल्टी को निम्न प्रकार से भरा जाता है –

पहली परत	–	2"–3"	ईंट व पत्थर
दूसरी परत	–	2"	रेत
तीसरी परत	–	6"–9"	मिट्टी व पुराना कम्पोस्ट
चौथी परत	–	2"	हरी घास, पत्तियां इत्यादि

इस प्रकार बाल्टी भरकर उसमें 100 से 120 केचुएं छोड़ दिये जाते हैं। एक माह बाद इस बाल्टी के ऊपर एक छोटे मटके में पानी भरकर उसमें बारीक–बारीक छेद करके लटका दिया जाता है, जिसमें कपड़े की चिन्दियों के माध्यम से पानी रिसता रहता है। एक माह में केंचुएं जो बाल्टी के ऊपर से नीचे की ओर बारीक–बारीक चालन करते हैं उनमें बारीक–बारीक रिक्तिकाएँ बाल्टी में भरे कम्पोस्ट में बन जाती है। ऊपर बंधे मटके में रिसता पानी से रिक्तिकाएँ बाल्टी में भरे कम्पोस्ट में बन जाती है। ऊपर बंधे मटके से रिसता पानी जब रिक्तिकाओं से गुजरता है तब उसमें केचुएं के शरीर से मूत्र एवं पसीने के रूप में छूटने वाला कोलाइडल द्रव्य मिल जाता है, जिसमें कई उपयोगी वृद्धिकारक हार्मोन्स एवं पोषक तत्व होते हैं। यह पानी बाल्टी के नीचे लगी टोंटी से 24 घण्टे बाद खोलकर एकत्र कर लिया जाता है, इसे वर्मीवाश कहते हैं। यह कीट नियंत्रण में भी सहायक होता है।

वर्मी कम्पोस्ट के लाभ

वर्मी कम्पोस्ट एक अच्छी किस्म की खाद है तथा साधारण कम्पोस्ट या गोबर की खाद से ज्यादा लाभदायक साबित हुई है। इसके प्रयोग करने में निम्नलिखित लाभ हैं :–

1. वर्मी कम्पोस्ट को भूमि में बिखेरने से भूमि भुरभुरी एवं उपजाऊ बनती है। इससे पौधों की जड़ों के लिए उचित वातावरण बनता है। जिससे उनका अच्छा विकास होता है।

2. भूमि एक जैविक माध्यम है तथा इसमें अनेक जीवाणु होते हैं जो इसको जीवन्त बनाये रखते हैं इन जीवाणुओं को भोजन के रुप में कार्बन की आवश्यकता होती है। वर्मी कम्पोस्ट मृदा से कार्बनिक पदार्थों की वृद्धि करता है तथा भूमि में जैविक क्रियाओं को निरन्तरता प्रदान करता है।

3. वर्मी कम्पोस्ट में आवश्यक पोषक तत्व प्रचुर व सन्तुलित मात्रा में होते हैं। जिससे पौधे सन्तुलित मात्रा में विभिन्न आवश्यक तत्व प्राप्त कर सकते हैं।

4. वर्मी कम्पोस्ट के प्रयोग से मिट्टी भुरभुरी हो जाती है जिससे उसमें पोषक तत्व व जल संरक्षण की क्षमता बढ़ जाती है व हवा का आवागमन भी मिट्टी में ठीक रहता है।

5. वर्मी कम्पोस्ट क्योंकि कूड़ा–करकट, गोबर व फसल अवशेषों से तैयार किया जाता है अतः गन्दगी में कमी करता है तथा पर्यावरण को सुरक्षित रखता है।

6. वर्मी कम्पोस्ट टिकाऊ खेती के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है तथा यह जैविक खेती की दिशा में एक नया कदम है। इस प्रकार की प्रणाली प्राकृतिक प्रणाली और आधुनिक प्रणाली जो कि रासायनिक उर्वरकों पर आधारित है, के बीच समन्वय और सामन्जस्य स्थापित किया जा सकता है।

उपयोग विधि

वर्मी कम्पोस्ट जैविक खाद का उपयोग विभिन्न फसलों में अलग–अलग मात्रा में किया जाता है। खेती की तैयारी के समय 2.5 से 3.0 टन प्रति हैक्टेयर उपयोग करना चाहिए। खाद्यान्न फसलों में 5.0 से 6.0 टन प्रति हैक्टेयर मात्रा का उपयोग करें। फल वृक्षों में आवश्यकतानुसार 1.0 से 10 किग्रा./पौधा वर्मी कम्पोस्ट उपयोग करें तथा किचन, गार्डन और गमलों में 100 ग्राम प्रति गमला खाद का उपयोग करें तथा सब्जियों में 10–12 टन/हैक्टेयर वर्मी कम्पोस्ट का उपयोग करें।

हरी खाद

अपघटित दलहनी अथवा अदलहनी हरे पौधों या उनके भागों को जब भूमि की नाइट्रोजन अथवा जीवांश की मात्रा बढ़ाने के लिए खेत में दबाया जाता है तो यही हरी खाद देना कहलाता है। यह क्रिया भूमि की संरचना के सुधार, जीवांश की मात्रा बढ़ाने तथा पोषक तत्व देने के लिए की जाती है। भूमि को इसी प्रकार उपजाऊ बनाने का कार्य भारतीय किसान यद्यपि प्राचीन काल से ही करते आ

रहे हैं तथा भारत में हरी खाद के नियमित प्रयोग का प्रचार चाय और कॉफी के यूरोपीय मालिकों ने किया।

हरी खाद के महत्व

हरी खाद के बदले अधिक आय देने वाली किसी अन्य फसल को उगाने की चाहत से हरी खाद का प्रचलन कम हो गया है। साथ ही अच्छे किस्म के बीजों की अनुपलब्धता, सिंचाई जल का अभाव, श्रमिकों की कमी तथा कम समय इसके प्रचलन में मुख्य बाधायें हैं। हरी खाद के प्रयोग से 40–60 किग्रा. प्रति हैक्टेयर नाइट्रोजन की बचत की जा सकती है। आजकल हरी खाद की ओर अब फिर ध्यान आकृष्ट हुआ है जिसके फलस्वरुप भारत में लगभग 67 हजार हैक्टेयर जमीन पर हरी खाद उगाई जा रही है। सनई एवं ढैचा भारत की सर्वाधिक प्रचलित खादें हैं तथा सेम, लोबिया और बरसीम आदि को भी कभी–कभी हरी खाद के रुप में प्रयोग करते हैं। हरी खाद मृदा की भौतिक दशा सुधार के साथ–साथ पोषक तत्व भी प्रदान करती है।

भारत में फसल अवशेषों और औद्योगिक अवशिष्टों जैसे धान का पुआल, गेंहू का भूसा, धान का छिलका, गन्ने के अवशेष आलू के डंठल, अखाद्य सब्जियाँ, चाय, तम्बाकू तथा कपास अवशिष्ट, प्रेसमड, वन का कूड़ा–कचरा तथा जलकुम्भी आदि के कृषि में प्रयोग की बहुत सम्भावनायें हैं।

कम नाइट्रोजन की मात्रा वाले फसल अवशेष जिनका कार्बन तथा नाइट्रोजन अनुपात विस्तृत होता है जैसे अनाजों तथा अन्य गैर दलहनी फसल अवशेषों को जमीन में मिलाने पर थोड़े समय के लिये घुलनशील नाइट्रोजन का स्थायीकरण हो जाता है। जिससे पौधों को नाइट्रोजन की उपलब्धता कम हो जाती है। यदि यही फसल अवशेष फसल की बुवाई से तीन–चार सप्ताह पूर्व जमीन में मिला दिये जायें तो नाइट्रोजन स्थायीकरण की सम्भावना भी कम हो जाती है। अधिकतम पादप सुलभ नाइट्रोजन 25–30 दिन तक स्थायीकृत होते हैं। यदि इस समय को छोड़कर फसल की बुवाई की जाये तो इस फसल के अलावा अगली फसल को भी फायदा होगा। परन्तु सघन कृषि क्षेत्रों में बहुफसलीय फसल चक्र में फसल अवशेषों को जमीन में मिलाने तथा सड़ाने के लिए दो फसलों के बीच शायद ही समय मिल पाता है। ट्रॉपीकल और सबट्रॉपीकल दशा में द्विफसलीय फसल चक्र में दो फसलों की बुवाई के बीच एक–दो महीने का खाली समय मिल जाता है। यह समय उपलब्ध फसल अवशेषों को जमीन में मिलाने के लिए उपयुक्त होता है।

हरी खाद देने की विधियाँ

भूमि की किस्म तथा जलवायु की अवस्थाओं के अनुरुप भारत के विभिन्न प्रान्तों में कितने ही तरीके हरी खाद के लिए अपनाये जाते हैं। हरी खाद मुख्यतः दो प्रकार से दी जाती है।

हरी खाद की सीटू विधि

इस विधि में हरी खाद की फसल उसी खेत में पैदा की जाती है तथा भूमि में दबायी जाती है जिसमें हरी खाद की फसल शुद्ध अथवा मिश्रित रुप से मुख्य फसल के साथ बोई जा सकती है। इस विधि में हरी खाद उन्हीं क्षेत्रों में दी जाती है जहाँ भूमि गहरी होती है तथा वर्षा पर्याप्त मात्रा में होती है अथवा सिंचाई का कोई प्रबन्ध होता है। सीटू विधि से हरी खाद की सफलता तथा उससे आशातीत लाभ प्राप्त करने के लिए अधिक नमी की आवश्यकता पड़ती है।

यदि नमी का अभाव होगा तो फसल की बढ़वार और उसकी फिर भूमि में सड़न क्रिया नहीं हो सकती है। बिना सड़ी हुई खाद फसल को कोई लाभ नहीं पहुँचा सकती बल्कि उल्टा खेत में दीमक आदि बढ़ने का भय रहता है। सीटू पद्धति से हरी खाद देने के लिए सनई, ढैचा, ग्वार, उड़द, लोबिया, बरसीम, लूसर्न, सैजी आदि फसल का उपयोग किया जाता है।

हरी पत्ती की हरी खाद

वैसे तो यह पद्धति पर्याप्त वर्षा अथवा सिंचाई की सुविधा वाले क्षेत्रों में भी अपनायी जा सकती है। परन्तु उन क्षेत्रों में जहाँ भूमि उथली होती है अथवा भूमि में 10 से 15 सेमी. की गहराई पर कोई सख्त तह हो अथवा पहाड़ी क्षेत्रों में जहाँ भूमि बहुत पतली तह के रुप में होती है तथा न्यून वर्षा वाले क्षेत्रों में विशेष रुप से हरी खाद इस विधि से दी जाती है। इस विधि में पेड़ों तथा झाड़ियों के पत्ते तथा कोमल टहनियाँ लाकर खेत में दबाई जाती हैं। ये कोमल भाग भूमि में थोड़ी नमी होने पर सड़ जाते हैं।

हरी खाद की फसल का चुनाव

भूमि, जलवायु, नमी तथा उद्देश्य को ध्यान में रखकर निम्न विशेषताओं वाली फसलों का चुनाव करना चाहिये।

1. फसल शीघ्र उगने वाली हो। सनई, कोदोनीश, उड़द, मूंग व लोबिया आदि फसलों में शीघ्र वृद्धि करने का गुण होता है। शीघ्र वृद्धि करने वाली जातियों के बोने से फसल चक्र

में आसानी से स्थापना हो जाती है अन्यथा अधिक समय लेने वाली हरी खाद की फसल से एक मुख्य फसल छोड़नी पड़ सकती है जिससे किसान को एक फसल का नुकसान उठाना पड़ सकता है।

2. फसलों का डालपात मुलायम हो। मुलायम डालपात तथा रेशाविहीन फसलों का अपघटन शीघ्र होता है तथा ऐसी फसलों के अपघटन के लिए रेशेदार फसलों की अपेक्षा कम पानी की आवश्यकता होती है। हरी खाद के लिए मुलायम एवं रेशाविहीन फसलों का, ऐसे क्षेत्रों में जहाँ कम वर्षा या पानी का अभाव हो, विशेष महत्व की है। जैसे लोबिया, उड़द, मोठ, कुल्थी, कदोजीरा, बरसीम, मुलायम डालपात वाली हरी खाद की फसलें हैं।

3. फसलों में अधिक शाखा व पत्ती हो। इससे भूमि में अधिक नाइट्रोजन मिलायी जा सकती है। अधिक डालपात वाली फसल का अपघटन भी जल्दी हो जाता है। ढैचा, वाकुची, लोबिया, कुदूजवाइन इस शर्त पर पूर्ति करने वाली फसलें हैं।

4. फसलों की जड़ें काफी गहरी हो। गहरी जड़ों वाली फसलें भूमि के नीचे तक घुसकर उसे भुरभुरा बना देती है तथा भूमि की निचली तह में उपस्थित भोजन तत्वों का उपयोग कर लेती है, जो बाद में हरी खाद के रुप में ऊपरी सतह में ही आ जाती है। यह बात भारी तथा बलुई किस्म की मिट्टियों में विशेष महत्व रखती है, क्योंकि हल्की भूमियों में घुलनशील तत्व नीचे चले जाते हैं तथा भारी भूमियों में जल निक्षालन तथा रिसाव बहुत कम होता है। सनई, ढैचा दोनों ही गहरी जड़ों वाली फसलें हैं।

5. बाजरा, ज्वार, मक्का आदि को जो दलहनी फसलें नहीं है फिर भी हरी खाद के लिए प्रयोग में किया जा सकता है। लेकिन अच्छा यही रहता है कि हरी खाद के रुप में किसी दाल वाली फसल को ही प्रयुक्त किया जाये। दलहनी फसलों की जड़ों में ग्रंथियाँ होती हैं। जिनमें उपस्थित अणुजीव राइजोबियम वायुमण्डल से नाइट्रोजन को भूमि में संचय एवं स्थिर करने की क्षमता रखते हैं।

6. हरी खाद के लिए फसलें सूखा अवरोधी रोग व कीट अवरोधी प्रचुर मात्रा में बीज पैदा करने वाली, अधिक वर्षा आदि से उत्पन्न होने वाली दशाओं को सहन करने वाली होनी चाहिये।

7. हरी खाद के लिये ऐसी फसलों का चुनाव किया जाये जो कृषकों के लिये सस्ती हो तथा दूसरे प्रयोग में भी प्रयुक्त होती हो। उदाहरण के लिये सनई की फसल खाद, रेशे, बीज, चारा आदि के उपयोग की है।

हरी खाद के लाभ

1. भूमि को जीवांश मिलता है जिससे लाभकारी जीवाणुओं की क्रियाशीलता बढ़ती है।
2. हरी खाद के पौधों द्वारा भूमि की गहरी सहत से लिये गये पोषक तत्व भूमि की ऊपरी सतह में आ जाते हैं।
3. इससे भूमि की संरचना में सुधार होता है।
4. भूमि में जल शोषण व धारण शक्ति बढ़ती है जिससे भूमि कटाव रोकने में सहायता मिलती है।
5. गहरी खाद के लिए जब दलहरी फसलें उगाई जाती है तो उनके द्वारा वायुमण्डल से स्वतंत्र नाइट्रोजन भूमि में इकट्ठी हो जाती है।
6. कुछ अनुपलब्ध तत्व जैसे फॉस्फोरस, कैल्शियम, पोटाश, मैग्नीशियम तथा लोहा आदि पोषक तत्वों की उपलब्धि बढ़ जाती है।
7. खरपतवार नियंत्रित होते हैं।
8. क्षारीय एवं लवणीयता वाली भूमियों में सुधार होता है।
9. मृदा संरचना में सुधार होता हैं
10. फसलों के उत्पादन में वृद्धि होती हैं

हरी खाद देने के संबंध में कुछ सुझाव

1. जिन क्षेत्रों में सिंचाई के साधन उपलब्ध हो वहॉ पर यदि समय पर वर्षा न हो तो सिंचाई करके हरी खाद की फसल बोयी जा सकती है यदि सिंचाई के साधनों का अभाव हो तो पहली वर्षा होते ही खेत जोतकर बीज की बुवाई कर देनी चाहिए।
2. जिन खेतों में हरी खाद की फसल बोई जाती हो वहां यह बात सुनिश्चित कर लेनी चाहिए कि आगामी फसल तब बोई जाए जब हरी खाद की फसल पूर्ण रूप से सड़ चुकी हो। यदि हरी खाद आगामी फसल के लिए अस्थाई रूप से प्राप्त नाइट्रोजन की मात्रा में ह्रास हो सकता है। जिसका मुख्य फसल की प्रारम्भिक वृद्धि पर बुरा प्रभाव पड़ेगा।

वैज्ञानिकों का मत यह है कि ऐसी दशा में बाद का सड़ाव करने वाले वैक्टीरिया खेत में उपस्थित प्राप्त नाइट्रोजन को खा जाते हैं।

3. गैर दलहनी हरी खाद की फसलों में नाइट्रोजनीय खाद आवश्यकता के अनुसार प्रयोग करना चाहिए जबकि दाल वाली फसालों में 2 में 4 क्विंटल सुपरफास्फेट प्रति हैक्टेयर प्रयोग करना चाहिए। सुपरफास्फेट के प्रयोग से दाल वाली फसलों को बड़ा लाभ पहुंचता है। इसके लिए प्रयोग से इन फसलों की जड़ों में उपस्थित ग्रन्थियाँ अधिक संख्या में बनती है ओर उनका आकार भी बड़ा होता है। जिसके फलस्वरूप भूमि में अधिक नाइट्रोजन स्थिर होती है। प्रयोगों से यह सिद्ध हो चुका है कि मुख्य फसल को सुपर फास्फ़ेट देने से जितना लाभ होता है उससे कहीं अधिक लाभ तब होता है जब सुपरफास्फेट हरी खाद की फसल में दिया जाता है।

4. हरी खाद का समुचित लाभ तभी प्राप्त किया जा सकता है जब उसकी वृद्धि तथा सड़ाव के लिए प्रयाप्त नमी खेत में हो। जिन क्षेत्रों में वर्षा ऋतु में 100 से 150 सेमी वर्षा हो जाती है। वहीं हरी खाद की सभी फसलें बिना सिंचाई के पैदा की जा सकती है। इसके विरुद्ध 50 से 60 सेमी से कम वर्षा वाले क्षेत्रों में सिंचाई की सुविधा के बिना हरी खाद नहीं होनी चाहिये। प्रयाप्त वर्षा वाले क्षेत्रों में कभी–कभी लम्बी अवधि तक सूखा पड़ जाता हैं ऐसी स्थिति में फसल की वृद्धि को प्रोत्साहित करने के लिये या अगर फसल खेत में दबी पड़ी हो तो उसके अपघटन को सुचारू रूप से चलाने के लिये सिंचाई करनी आवश्यक होती है। जिस हरी खाद में उर्वरकों का प्रयोग किया गया हो, उनमें तो नमी का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

5. हरी खाद को मिट्टी पलटने वाले लोहिया हल से मिट्टी की मोटी तह से अच्छी तरह दबा देना चाहिए। समान रूप से विघटन के लिये यह आवश्यक हे कि जड़ों के पास पत्तियों तथा शाखाओं को दबाया जाये। शुष्क क्षेत्रों में हरी खाद की छोटी अवस्था में ही जब काफी कोमल हो दबा देना चाहिए। पर्याप्त वर्षा वाले अथवा सिंचित इलाकों में फसल को तब दबाना चाहिये जब उसमें सबसे अधिक कार्बनिक पदार्थ हो हर दशा में यह फसल मुख्य फसल की बुवाई से एक से डेढ महीने पहले आवश्यक रूप से खेत में जोत देनी चाहिए।

हरी खाद की खेती

- **जलवायु** – फसल एवं उत्तम हरी खाद के लिए नम जलवायु का होना आवश्यक है। फसलों की वृद्धि व विच्छेदन के लिए कम से कम 60 सेमी वर्षा का होना आवश्यक है।
- **भूमि का चुनाव** – चिकनी व लवणीय भूमि के लिए ढैया, वरसीम व बलुई व कम उर्वरकता वाली भूमियों के लिए सनई, मूँग, उड़द, ज्वार आदि उपयुक्त फसलें रहती हैं।
- **भूमि की तैयारी** – हरी खाद की फसलों को बोने हेतु खेती की विशेष तैयारी की आवश्यकता होती है। आवश्यकता होने पर 1 या 2 जुताई कर खेत तैयार किया जा सकता है।
- **बोनी का समय** – खरीफ फसलें जैसे सनई, ढैया, उड़द, लोबिया, ज्वार, मूंग आदि को बोनी वर्षा आरम्भ होते ही बोनी की जाती हैं जिन क्षेत्रों में सिंचाई के साधन उपलब्ध हैं वहाँ पर रबी की फसलों को काट कर अप्रेल, मई, जून में खेत का पलेवा करके हरी खाद की फसलों की बुवाई कर सकते हैं। रबी की फसलें मटर, बरसीम, मेथी आदि को अक्टूबर मसूर आदि को दिसम्बर तक व मेथी, सैजी की बुआई जनवरी तक अन्य फसलों की कटाई करने के बाद करते हैं।
- **बीजदर** – हरी खाद के लिये बोयी जाने पर प्रति इकाई क्षेत्र अधिक बीज बोया जाता है जैसे सनई 40, ढैचा 30, ज्वांर 20, लोबिया 50, मटर 100, सैजी 30, मूंग व उड़द 30 व बरसीम की बीज 20 कि.ग्रा./है. की दर से उपयोग किया जाता है।
- **सिंचाई** – जहाँ पर सिंचाई उपलब्ध हो वहाँ पर फसल की आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहना चाहिये।
- **फसल पलटाई का समय** – फसल की विशेष अवस्था पन पलटाई करने से भूमि की सबसे अधिक नत्रजन व जीवांश पदार्थ प्राप्त होता है। इस अवस्था के पूर्व या बाद में पलटाई करना लाभदायक नहीं होता है। यह विशेष अवस्था में हो और फसल में फूल निकलने प्रारम्भ हो गये हो इस समय पर वानस्पतिक वृद्धि अधिक होती है तथा पौधों की शाखायें व पत्तियाँ मुलायम होती है। इस अवस्था में कार्बन–नत्रजन अनुपात भी कम होता है। सनई की फसल में 50 दिन बाद ढैचा, 40 दिन बाद यह अवस्था आती है। बरसीम आदि की फसलों से 2–3 कटाई के पश्चात् फसल की खेती में दबा सकते हैं।

वनस्पति जीवनाशियों का महत्व

भारतवर्ष में वनस्पतियों का इस्तेमाल प्राचीनकाल से ही हो रहा है। इनका उपयोग घाव, फोड़े, दर्द, सूजन अमीर निवारण और भण्डारण में अन्न फल और फूल के रखरखाव हेतु किया जाता था। वनस्पति के किसी भाग यानि जड़ तना, पत्ता, छाल, फल, फूल और बीज को इस्तेमाल करके हानिप्रदजीवों की रोकथाम की जाती है। इन भागों में रसायनिक तत्व होते हैं जो कीट, रोग और खरपतवार आदि का नियंत्रण करते हैं। इसे वनस्पति जीवनाशी या जैविक जीवनाशी भी कहते हैं जो फसलों स्तरधारियों, अनाज, मिट्टी, पानी और पर्यावरण के लिये पूर्व सुरक्षित होता है।

हमारे देश में कई पौधे जैसे नीम, करंज, तम्बाकू, सीताफल, वकायन, क्राइसेन्थीमन आदि पौधे विस्तृत रूप से पाये जाते हैं। जिनके विभिन्न उत्पादों के कीट व्याधियों का नियंत्रण आसानी से किया जाता है।

नीम

यद्यपि नीम के वृक्ष का प्रत्येक भाग– जड़, छाल, फूल, पत्ते तथा फल अपनी उपयोगिता सिद्ध कर चुके हैं, परन्तु औषधीय एवं व्यावसायिक दृष्टि से नीम का जो भाग सर्वाधिक मूल्यवान सिद्ध हो चुका है वह है इसका फल अथवा फल से प्राप्त होने वाला बीज। नीम का बीज न केवल औषधीय दृष्टि से उपयोगी है बल्कि यह उच्च श्रेणी के कीटनाशक का भी स्रोत है तथा बहुमूल्य उर्वरक का भी। ''आम के आम गुठलियों के दाम'' वाली कहावत यदि किसी वृक्ष/फल के बारे में अक्षरशः सत्य प्रतीत होती है तो इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है– नीम।

नीम के बीजों से तेल निकालने के लिए कुटीर या लघु उद्योग इकाई लगाई जा सकती है। यद्यपि इसी इकाई में अनेक अन्य अखाद्य बीजों जैसे करंजा, महुआ, पलास, कुसुम, अरन्डी, तुम्बा आदि का भी प्रक्रियाकरण किया जा सकता है तथा एक्सपेलर को धोकर/साफ करके इसमें खाद्य तेल भी निकाले जा सकते हैं परन्तु प्रस्तुत इकाई में केवल नीम के बीजों को ही प्रक्रियाकृत किया जाना प्रस्तावित है।

नीम एवं नीम उत्पादों का कीट व्याधि नाशक के रूप में उपयोग नया नहीं है। पूर्व काल से ही हमारे देश के कृषक यह जानते थे कि नीम एक मात्र ऐसा वृक्ष है जो असंख्य टिड्डियों के

आक्रमण से बचा रहता है। नीम की पत्तियों का प्रयोग अनादि काल से सुरक्षित अन्न भण्डारण में किया जा रहा है। विगत कई वर्षों से नीम वृक्ष की गुणवत्ता परखने के लिए अनुसंधान होते आ रहे हैं। परन्तु इसका उपयोग सीमित ही रहा है।

कुछ वर्षों पूर्व ही इसकी गुणवत्ता की परख विभिन्न क्षेत्रों में की गई व उपयोग वृहद् रूप से बढ़ा है। नीम के सभी भाग, जड़, तना, पत्ती, फूल व फलों में कीटनाशक गुण पाये जाते हैं निंबौली में सबसे अधिक यह गुण पाया जाता है।

वर्तमान में नीम आधारित बहुत से उत्पाद बाजार में उपलब्ध हैं। देश में 40 ऐसी प्रौद्योगिक इकाईयाँ है जो 37 विभिन्न उत्पादों का उत्पादन कर रही है। एवं जिनका बाजार मूल्य रू. 300–400 मिलियन रहा है। अब हमारी यह नितांत आवश्यकता है कि हम इन्हीं उत्पादों का उपयोग दिनों–दिन अनुसंधानों द्वारा बढ़ायें एवं कृषकों को इनकी उपयोगिता के बारे में विस्तार एवं प्रसार के द्वारा विस्तृत जानकारी दें। ऐसे कार्यक्रमों को बढ़ावा दें जिनके द्वारा कृषक भाई इन नीम एवं नीम के उत्पादों को अपनी खेती की तकनीक में पूर्ण रूपेण सम्मिलित करें। इसमें समेकित नाशीजीव प्रबंधन, जैविक खेती एवं पर्यावरण संतुलन के मूलभूत सिद्धान्तों को बल मिलेगा।

नीम का कीटों पर प्रभाव

अनुसंधानों के बढ़ते क्रम में यह निष्कर्ष निकाला जा चुका है कि नीम के उत्पाद कीटों की 200 से अधिक प्रजातियों को विभिन्न अवस्थाओं पर प्रभावित करते हैं। नीम के वृक्ष से तैयार किये जाने वाले विभिन्न उत्पाद कीटों के लिए बहुउपयोगी हारमोन्स का आकार प्रकार पर निर्धारण करते हैं। कीटों का शरीर इन नीम के तत्वों को सोख लेता है।

ये हार्मोन्स अंतः प्रणाली को सुचारू रूप से चलाने में व्यवधान उत्पन्न करते हैं तथा कीटों के स्वभाव एवं शरीर कार्यिकी में परिवर्तन पैदा करते हैं। जिससे कीटों का मस्तिष्क एवं शीरी प्रजनन कार्य करने के लिये अस्थिर हो जाता है एवं उनकी संख्या सीमित रह जाती है।

नीम का रोग पर प्रभाव

आज तक जितने भी अनुसंधान एवं उपयोग हुये हैं सभी में नीम कीटनाशक के रूप में ज्यादा उपयोग हुआ है। नीम की निंबोली के सत से सीमोनाइड नामक तत्व निकाला जाता है जिसमें कीटनाशक गुण होते हैं नीम के तेल के उपयोग का उल्लेख कहीं–कहीं पर किया गया है। इसके तेल में भी अन्य

तेलों के समान समानता पाई जाती है परन्तु कृषि विभाग, अमेरिका के अनुसंधानकर्ताओं ने यह परिणाम निकाला है कि नीम के तेल में भी जीवनाशीय गुण पाये जाते हैं और इसका उपयोग पौध रोग नियंत्रण में भी किया जा सकता है। उन्होंने इसका उपयोग प्रमुख विनाशकारी रोग जैसे भभूतिया, चूर्णिल, आसिता एवं गेरूआ के नियंत्रण के लिये सफलतापूर्वक किया और यह प्रमाणित किया कि नीम के तेल के उपयोग से पौधों पर किसी भी प्रकार का कोई भी दुष्प्रभाव नहीं पड़ता। सर्वप्रथम पौध–रोग वैज्ञानिक जेम्स लूक ने नीम के तेल एवं जल के मिश्रण का उपयोग सुगंधित एवं शोभा के लिये लगाये जाने वाले पौधों में गुरुआ एवं भभूतिया रोग का नियंत्रण कम (0.25%) सांद्रता का उपयोग, प्रभावी रूप से किया। उन्होंने सर्वप्रथम यह सिद्ध किया कि नीम के तेल में फफूंदनाशक एवं कीटनाशक दोनों ही प्रकार के गुण होते हैं जबकि इसमें अजेडिरेचटिन नामक तत्व नहीं होता । इसके बाद, एक अन्य वैज्ञानिक जेरिनि रुआवेली ने अपने अनुसंधानों द्वारा यह सिद्ध किया कि दलहनी वर्गीय सब्जियों में लगने वाले गेरूआ रोग के नियंत्रिण के लिए नीम का तेल उपयोग 100% प्रभावकारी होता है। निम्नलिखित विभिन्न रूपों में इनका उपयोग किया जा रहा है एवं भविष्य में इनके विस्तार की संभावनायें भी प्रबल हैं।

1. फफूंदनाश के रूप में

विश्वभर में नीम का उपयोग वृहद् रूप से फफूंदनाशक के रूप में हो रहा है। चाहे फसल हो या वृक्ष हो यह सर्व विदित है कि फफूंद/कवक अनेकानेक प्रकार से फसल को हानि पहँचाते हैं। जिनकी गणना उग्र रूप में की जाती है इनमें से कुछ एक प्रमुख पौध रोगों को फफूंद नाशकों एवं रसायनों द्वारा कम किया जा सकता है। देश की मुख्य खाद्यान्न जेसे गेहूँ धान मक्का पर भी इन रोगों का प्रकोप होता हैं

नीम के तेल का उपय्योग, चने के लगने वाले उगरा के प्रमुख रोग जनक जैसे राइजोक्ट्रोनिया सोलेनाई, स्केलेरोशियम रोल्फसाई एवं फ्यूजोरियम ऑक्सीस्पोरम की रोकथाम के लिए सफलतापूर्वक किया जा चुका है एवं उनके परिणाम भी अच्छे मिले हैं। नीम की खली का उपयोग भमि जनक बहुत से हानिकाराक रोगों के नियंत्रण में भी प्रमाणित किया गया है जो कि फसल की अनुपस्थिति में अपना जीवन यापन भूमि में या फसल अवशेषों पर करते हैं। नीम के उत्पादों का एक अन्य उत्पाद है जिसे निम्बोली के नाम से जाना जाता है। इसका भी उपयोग दिनों दिन बढ़ता जा रहा है क्योंकि यह सरलता से उपलब्ध हो जाती है व पर्णों पर लगने वाले विभिन्न रोग जैसे – चूर्णिल आसिता का सफल नियंत्रक भी हैं।

सामान्यतः यह देखा गया है कि अगर निंबोली के सत का छिड़काव समय अंतराल पर किया जाता है तो 90 प्रतिशत फसल को पर्ण–रोगों से बचाया जा सकता है। यह उसी समय संभव है जबकि इसका रोग आने से पूर्व किया गया हो।

2. विषाणु नाशक के रूप में

आधुनिक कृषि में विषाणु रोग फसलों को नये–नये रूपों से क्षति पहुँचाता रहे हैं एवं जिनका त्वरित निदान संभव ही नहीं हो पा रहा है। इसका प्रमुख कारण यह है कि विषाणु सामान्यतः पौधों की अंतः कोशिकाओं में उपस्थित रहते हैं एवं पौधों में होने वाली सामान्य पादप कार्यिकी की प्रभावित करते हैं। विषाणु जनित रोगों का नियंत्रण एक जटिल प्रक्रिया है जबकि ऐसा रोग अन्य रोग जनक जैसे–जीवाणु, कवक सूत्रकृमि इत्यादि में नहीं है। वर्तमान में अपनायी जा रही नियंत्रण की प्रक्रियाओं से हम केवल विषाणुओं के फैलाव को रोक रहे हैं न कि शत् प्रतिशत नियंत्रण कर रहे हैं।

इन हानिकारक विषाणुओं का फैलाव का प्रकिर्णन कीटों, धूल के कणों या अनावश्यक रूप से भारी पानी द्वारा होता हैं अनुसंधान द्वारा ऐसे कई रसायनों को खोजा गया हैं जिनमें पशुओं व मनुष्यों में होने वाले विषाणुजनिक रोगों को नियंत्रित किया जा सकता है। परंतु ऐसा कोई भी रसायन नहीं खोजा गया जिससे कि पौधों में विषाणु द्वारा हो रही क्षति को रोका जा सके। नीम के सत में ऐसा गुण पाया जाता है, जिससे कि नीम के उत्पाद, कीटों द्वारा विषाणुओं के प्रसारण को सीमित करते हैं, इसके विभिन्न सफल प्रायोगिक उदाहरण निम्नलिखत हैं। धान की फसल में लगने वाले प्रमुख टंगरू वायरस रोग की तीव्रता को नीम के तेल के छिड़काव से कम किया जा सकता है। जो कि धान में भूरा फुदका द्वारा पैदा होता हैं नीम एवं सीताफल के तेल के मिश्रण द्वारा धान के टंगरों विषाणु द्वारा उत्पन्न रोग को नियंत्रित किया जा सकता है।

हमारे देश में नीम की पत्ती के सत द्वारा तम्बाकू मोजेक वायरस की रोकथाम सफलता पूर्वक की गई, जो कि कद्दूवर्गीय साग सब्जी में लगने वाला प्रमुख रोग है। अगर धान की रोपणी भूमि में पूर्व में उपयोग की गयी नीम की खली पर लगायी जाती है तो विषाणु रोग का प्रकोप कम होता है जैसे धान की टुंगरो वायरस रोग।

3. सूत्र कृमि नाशक के रूप में

नीम के उत्पादों का भूमि उपचार के रूप में उपयोग सूक्ष्म जीवों के अलावा विभिन्न सूत्रक्रमियों को भी प्रभावित करता है, जो अपना जीवन यापन भूमि में या पौधों की जड़ों के आस–पास करते हैं।

सूत्र कृमी एक प्रकार के विनाशकारी सूक्ष्म जीव हैं जिनका कि स्वरूप सूत्र के समान होता है। इस गुण के कारण इनका नियंत्रण भी कठिन है एवं जिन रसायनों द्वारा इनका नियंत्रण सम्भव है उनका बाजार मूल्य अधिक होता है इस कारण उपयोग कम है। बाजार में दिनों दिन बढ रही सूत्रकृमी नाशकों की माँग को इनके अत्यधिक विषैले प्रभाव एवं पर्यावरण के लिये असुरक्षा ने इनके उपयोग को और भी कम कर दिया है। नीम के उत्पादों का उपयोग इस दिशा में एक प्रभावकारी कदम है। नीम में निहित लीमोनोइड़ के यौगिक जो कि निंबोली से निकाले गये हैं जडगॉठ सूत्रकृमी के लिए अत्यन्त ही प्रभावकारी हैं जिनके प्रकोप से लगभग सभी वर्ग की फसलें व पौधे प्रभावित होते हैं। लीमोनोइड के तत्व सूत्रकृमी की इल्ली की वृद्धि एवं उसके अंडों के वृद्धि एवं विकास पर रोक लगाते हैं। यह बहुत ही कम सांद्रता पर सूत्रकृमियों पर नियंत्रण कर सकता है। नीम का तेल निकालने के बाद तो भी अवशेष रह जाता है।

अगर उसका भी पानी से घोल बनाकर उपयोग किया जाये तो भी सूत्रकृमियों के प्रकोप को कम किया जा सकता है। अनुसंधानों की इसी श्रंखला को आगे बढ़ाते हुये हमारे देश के कृषि वैज्ञानिकों ने यह प्रमाणित कर दिया है कि यदि लकड़ी के बुरादे एवं नीम की खली का उपयोग भूमि उपचार के लिए किया जाता है। तो टमाटर के जडगाँठ सूत्रकृमियों की संख्या प्रकोपित भूमि में शून्य तक की जा सकती है। उनके उपयोग से वैज्ञानिकों ने टमाटर के पौधों में अच्छी पौधे वृद्धि भी पाई। दक्षिण भारत के कृषक नीम की खली का उपयोग मसालों की खेती में भी करते आ रहे हैं वहाँ पर प्रति वर्ष 100–300 किलो प्रति हेक्टर की दर से नीम की खली का उपयोग होता है।

जैविक कीट नियंत्रक :

जैविक कीट नियंत्रक मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं :–

1. वनस्पति आधारित :

इसमें मुख्यतः नीम, करंज, आक के पत्तों का रस या बीजों का तेल को छिड़काव में प्रयोग किया जाता है। प्राचीन ज्ञान के आधार पर इसमें गो मूत्र मिलाने से इसकी क्षमता कई गुना बढ़ जाती है। इस प्रकार के कीट नियंत्रक एकल किसान या स्वयं सहायता समूह द्वारा बनाये जा सकते हैं। गौशालाओं से सहयोग लेकर इनका बड़े स्तर पर उत्पादन किया जा सकता है।

वनस्पति जीवनाशियों का महत्व

- 100 लीटर गोमूत्र में 10 किलो नीम की पत्ती + 10 किलो आक की पत्ती + 10 किलो कुटा हुआ लहसुन मिलाकर मिट्टी या प्लास्टिक के पात्र में भूमि के अंदर या छाया में ढककर रख देते हैं। 10–15 दिन बाद इस मिश्रण को छानकर 1.5 या 50 लीटर की बोतल/जरीकेन में पैक कर बेचते हैं। यह कीट नियंत्रक 3 माह तक प्रयोग के लिए ठीक रहता है। इसकी एक लीटर मात्रा 15–20 लीटर पानी में मिलाकर प्रत्येक 10–15 दिन बाद छिड़काव करना चाहिए। एक लीटर की लागत 4–5 रूपये आती है और 10 रूपये/लीटर में बिक जाती है।
- नीम के बीजों से तेल उत्पादित करने हेतु इकाई योजना :– नीम आधारित कीट नियंत्रक हेतु कच्चे माल व तेल/खल उत्पादन की जानकारी निम्न प्रकार है –

नीम का तेल तथा खली

(अ) नीम के तेल के उपयोग

नीम के तेल के लिए विशाल बाजार उपलब्ध है। नीम तेल के अनेक उपयोग हैं जिनमें से कुछ प्रमुख उपयोग निम्नानुसार हैं :– समन्वित कीट प्रबन्धन में नीम के उपयोग

- नीम के तेल का उपयोग कीट नियंत्रक के रुप में
- मच्छर भगाने में नीम के तेल का उपयोग
- नीम तेल से औषधियों का निर्माण
- नीम तेल का साबुन निर्माण में उपयोग
- कॉस्मेटिक्स में उपयोग
- लुब्रीकेन्ट के रुप में
- नीम तेल का निर्यात

नीम के तेल की बिक्री के लिये सम्भावित बाजार

उपरोक्तानुसार देखा जा सकता है कि नीम के तेल के बहुपयोगी होने के कारण इसके लिए पर्याप्त बाजार उपलब्ध हो सकता है। मुख्यतया इसके विक्रय के लिए निम्नानुसार सम्पर्क किए जा सकते हैं :–

- खादी ग्रामोद्योग आयोग/बोर्ड की विभिन्न योजनाओं के अंतर्गत साबुन निर्माण करने वाली विभिन्न इकईयाँ।

- उच्च गुणवत्ता का धुलाई / टॉयलेट सोप का निर्माण करने वाली संस्थायें।
- नीम तेल पर आधारित विभिन्न औषधियों–कॉस्मेटिक्स का निर्माण करने वाली इकाईयाँ।
- फसल सुरक्षा हेतु बनाए जाने वाले पेस्टीसाइड्स / इन्सैक्टीसाइड्स के निर्माता तथा कीट नियंत्रकों के उत्पादक।
- नीम तेल से खाद्य तेल का निर्माण करने वाली इकाइयाँ।
- नीम के तेल को अन्य औद्योगिक उपयोगों हेतु प्रयुक्त करने वाली इकाइयाँ जैसे–मच्छर भगाने से सम्बन्धित उत्पाद बनाने वाली इकाइयाँ, लुब्रीकेन्ट्स बनाने वाली इकाईयाँ तथा अन्य विविध उत्पाद।

नीम की खली के उपयोग

1. भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाने हेतु एक उर्वरक के रुप में।

नीम की खली का उपयोग मुख्यतया खेती तथा बागवानी में मिट्टी की उर्वरा शक्ति बढ़ाने हेतु किया जाता है। इसके साथ–साथ कृमियों को समाप्त करने में भी यह काफी प्रभावी है, उदाहरणार्थ कोल्हू विधि से तेल निकाले जाने पर तेल की काफी मात्रा बीजों में रह जाती है। इस खली का उपयोग सब्जी–फल के बागानों आदि में डालने के लिए किया जाता है, दूसरा इसका उपयोग नाईट्रोजन संरक्षण (उर्वरक के रुप में) हेतु किया जाता है, वर्तमान में इसका काफी मात्रा में उपयोग गन्ना तथा धान की खेती में किया जा रहा है इसके अतिरिक्त कई अन्य फूलों, फलों तथा सब्जियों की खेती में भी नीम आवश्यक रुप से प्रयुक्त होता है। प्रायः नीम की खली की बिक्री दर 350 से 450 रूपये प्रति क्विंटल तक होती है।

2. यूरिया के उपयोग से अधिकाधिक लाभ लेने में (नीम कोटेड यूरिया तैयार करने में)

हालांकि जैविक खेती में संश्लेषित उर्वरक जैसे यूरिया, डी.ए.पी., आदि का उपयोग बिल्कुल नहीं किया जाता है किन्तु यदि किसी उपाय से यूरिया का उपयोग कम हो जाये तब इसे जैविक खेती की दिशा में बढ़ता हुआ कदम ही कहा जा सकता है। यह उन किसान भाइयों के लिए उचित उपाय है जो धीरे–धीरे जैविक खेती की ओर बढ़ना चाहते हैं। सम्भवतया विभिन्न देशों के अधिकांश किसानों को यह

जानकारी न हो कि पौधों को दिए जाने वाले यूरिया का अधिकांश भाग (65–70 प्रतिशत) बेकार चला जाता है तथा पौधे को मात्र 30–35 प्रतिशत यूरिया ही मिल पाता है। इसकी प्रमुख वजह यह है कि कुछ यूरिया तो पानी में घुल कर जमीन के नीचे चला जाता है, जबकि कुछ वाष्पीकृत हो जाता है। इसके अतिरिक्त इसका एक बड़ा भाग जमीन में स्थित बैक्टीरिया से नाईट्रीफिकेशन द्वारा नाईट्रेट में बदल कर बेकार हो जाता है। यदि इस यूरिया का नाईट्रीफिकेशन रोक दिया जाए तो यह पौधे का अधिक मात्रा में अधिक दिनों के लिए उपलब्ध रहता है तथा नीम में यह सब करने की पूरी क्षमता है।

2. सूक्ष्म जीव अथवा कीट आधारित कीट नियंत्रक :–

(अ) कई कीट नियंत्रक में सूक्ष्मजीव जैसे वाइरस, बैक्टीरिया, फफूंद आदि का प्रयोग कर कीट/फफूंद को नष्ट करने में प्रयोग किया जाता है। इनमें कुछ इस प्रकार हैं :–

नाम	प्रजाति	उपयोग
एन.पी.वी.	वाइरस	लट/इल्ली के मारने में
बी.टी.	जीवाणु	लट को मारने में दीमक/सफेद लट के नियंत्रक में
मेट्रीजियम	फफूंद	दीमक/सफेद लट के नियंत्रण में
ट्राइकोडर्मा	फफूंद	भूमि से होने वाले फफूंद रोगों के नियंत्रण में

जीवाणु खाद की तरह इन सभी सूक्ष्म जीवों के उत्पादन में प्रयोगशालाओं का होना आवश्यक है और कृषि स्नातक इसे प्रशिक्षण के बाद आसानी से प्रयोगशालाओं में बना सकते हैं।

(ब) दूसरे प्रकार के कीट नियंत्रक जिनमें परभक्षी कीटों का प्रयोग होता है जैसे ट्राईकोग्रामा, क्राइसोपारला आदि को प्रशिक्षण के बाद स्वयं सहायता समूह द्वारा बनाया जा सकता है।

इस प्रकार जैविक खेती में एकल किसान, स्वयं सहायता समूह, जैविक कृषि सहकारी समिति, कृषि स्नातक आदि सभी के लिये गाँव में ही रोजगार की अच्छी सम्भावनायें हैं। इसके लिए प्रशिक्षण व ऋण के लिए निम्न संस्थाओं से सम्पर्क किया जा सकता है :

1. क्षेत्रीय कार्यालय – खादी व ग्रामोद्योग आयोग – मार्जिन मनी स्कीम।

2. क्षेत्रीय कार्यालय – नाबार्ड बैंक – किसान क्लब/स्वयं सहायता समूह

3. जिला उद्योग केन्द्र/डी.आर.डी.ए.

प्रधानमंत्री ग्राम स्वरोजगार व ग्रामीण मंत्रालय की अन्य रोजगार योजनायें

इनमें से अधिकांश योजनाओं में 20–30 प्रतिशत तक सब्सिडी का भी प्रावधान है। इस प्रकार विकेन्द्रित उत्पादन से गाँव में ही जैविक खेती के आदानों के उत्पादन से न केवल रोजगार पैदा होंगे वरन् जैविक आदानों की क्षमता भी बढ़ेगी क्योंकि जैविक आदान तभी सबसे अधिक उपयोगी होते हैं जब उन्हें स्थानीय स्तर पर बनाकर तुरन्त उपयोग किया जाये।

खरपतवार नियंत्रण में रोजगार :

परम्परागत रुप से खरपतवार नियंत्रण सामूहिक तौर पर हाथ से निराई गुड़ाई करके किया जाता था। इसमें बहुत रोजगार पैदा होता था। आज खरपंतवार नाशी रसायनों के उपयोग करने के कारण न केवल रोजगार समाप्त हुआ वरन् भूमि व वातावरण भी जहरीला हो गया है। जैविक खेती में साफ बीज का प्रयोग, फसल चक्र तथा हाथ के चलने वाले औजारों से खरपतवार नियंत्रण किया जाता है जिसमें न केवल खेत में वरन् इस छोटे औजारों व यंत्रों को बनाने वाले कारीगरों को रोजगार मिलता है पुरानी साईकिल से खरपतवार साफ करने का हैरों मात्र 500/– में बन सकता है जिससे. 3–4 दिन में एक हैक्टेयर में निराई गुड़ाई हो सकती है।

इस प्रकार जैविक खेती में न केवल आदानों के उत्पादन में वरन् इनमें काम आने वाले छोटे–छोटे औजारों उपकरणों को बनाने या ठीक करने वाले कारीगरों के लिए भी रोजगार की असीम संभावनायें हैं।

तम्बाकू – तम्बाकू के रस व धूल का रोगजनक कीओं के नियंत्रण हेतु 300 वर्ष पूर्व उपयोग किया जाता था। तम्बाकू मं पया जाने वाला निकोटिन तत्व कीटनाशक रूप में कार्य करता है। तम्बाकू का रस सरसों के माहू कपास की सफेद मक्खी, थ्रिप्स व वालवोर्म के भी प्रभावी ढंग से नियंत्रित करता है। धान से भूरा व हरा फुदला, बेगन, आलू, पत्तगोभी के ग्रब्ज, चने की इल्ली, ल्यूटेरा पर भी प्रभावी पाया गया हैं तम्बाकू इल्ली की 10 प्रतिशत पत्ती रस छिड़काव मे प्रभाव पाया गया है।

वनस्पति जीवनाशियों का महत्व

करंज – करंज अतिप्राचीन भारतीय पौधा है। इस पौधे में करंजीनिन / फ्यूरा फ्लोविन नाम सक्रिय तत्व पाया जाता है। करंज को 1 प्रतिशत तेल से दलहनों को उपचारित कर रखने पर 5 से 6 महीने तक सुरक्षित रहती है तथा स्वाद व सुगंध पर कोई अंतर नहीं पड़ता है। करंज की खाली तम्बाकू को जमीन के वीटल्स से सुरक्षा करती है। इसका भूमि पर कोई विपरीत असर नहीं होता है बल्कि पौध को ल्यूटरा से बचाव करती है। करंज के तेल पत्ती सर से धान के कई कीट नियंत्रित किये जा रहे हैं।

सीताफल – सीताफल के तना व पत्ते के कई तरह के उल्कोलाइड पाये जाते हैं इसका रस दीमक, जड़, ग्रब्ज व अन्य कीटों को प्रभावी ढंग से नियंत्रित करते हैं। दाल बीजों में सीताफल के तेल से उपचारित कर भण्डारित करने पर अधिक समय तक सुरक्षित रहती है। कुसुम में लगने वाले माहूँ पर बीज के 2 तथा 5 प्रतिशत छिड़काव प्रभावी पाया गया है।